

"विश्व साहित्य ग्रन्थमाला"

(प्राचीन-साहित्य-विभाग का प्रथम ग्रन्थ)



Kunda Mâ
by
Vâgîshw

सोल-ऐजन्ट

मोतीलाल बनारसीदास

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
(प्राचीन साहित्य-विभाग का पहला ग्रन्थ)

महाकवि दिङ्नाग कृत—

कुन्दमाला

अनुवादक—
वागीश्वर विद्यालङ्कार, साहित्याचार्य
प्रोफेसर संस्कृत साहित्य, गुरुकुल विश्व विद्यालय,
कांगड़ी।

—

प्रथम संस्करण
२१००

मार्च १९३२

मूल्य १)
सजिल्द १।=)

प्रकाशक—

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला,

मैक्लेगन रोड, लाहौर।

मुद्रक—

टाइटिल और भूमिका—

नवजीवन प्रेस, लाहौर।

शेष पुस्तक—

रावी प्रेस, लाहौर।

परिचय

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के संचालकों ने संसार के श्रेष्ठ साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करने का संकल्प किया है। इस माला में कहानी, उपन्यास, इतिहास, दर्शन, प्राचीन साहित्य आदि सर्वोपयोगी विषयों पर अन्य भाषाओं की चुनी हुई पुस्तकों के अनुवाद और मौलिक ग्रन्थ, पृथक् पृथक् विभागों में, प्रकाशित किये जांयगे। प्रस्तुत पुस्तक 'प्राचीन साहित्य विभाग' का प्रथम ग्रन्थ है। महाकवि दिङ्नाग का यह "कुन्दमाला" नामक नाटक, कुछ ही समय पूर्व उपलब्ध हुवा है और अपनी श्रेष्ठता के कारण साहित्यिक समाज में बहुत ख्याति प्राप्त कर रहा है। कविकुल गुरु कालिदास के प्रतिद्वन्दी महाकवि दिङ्नाग की यह अमर कृति निस्सन्देह इतनी उच्च है कि इसे विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के 'प्राचीन साहित्य विभाग' का प्रथम ग्रन्थ बनाकर माला के संचालक गर्व अनुभव कर सकते हैं।

यह अनुवाद गुरुकुल विश्वविद्यालय के संस्कृत साहित्य के उपाध्याय श्रीयुत वागीश्वर विद्यालंकार का किया हुवा है पाठकों को

यह जान कर आश्चर्य होगा कि यह अनुवाद केवल पन्द्रह दिनों में किया गया है। जो लोग मूल संस्कृत कृति के साथ इस अनुवाद का मिलान करने का कष्ट करेंगे, उन्हें इस अनुवाद की श्रेष्ठता का अन्दाज़ा आसानी से लग सकेगा। अनुवादक महोदय का दावा है कि उन्होंने यद्यपि मूल कृति का बिल्कुल शाब्दिक अनुवाद नहीं किया, तथापि वह लेखक के भावों को इस अनुवाद में पूर्णतः ले आये हैं। मूल कृति का एक भी ऐसा वाक्य नहीं, जिसका पूरा भाव इस अनुवाद में न आगया हो। मेरी राय में उन्हें यह दावा भरने का सचमुच पूर्ण अधिकार है। प्रो० वागीश्वर विद्यालंकार स्वयं एक श्रेष्ठ कोटि के कवि हैं। हिन्दी-कविता के जगत में, उनकी छापेखानों से बचकर रहने की आदत के कारण, उन्हें अभी तक कम लोग ही जान पाये हैं, मगर जिन्हें इस प्रतिभाशाली कवि से परिचिति प्राप्त करने का कभी अवसर मिला है, वे लोग जानते हैं कि कविता के क्षेत्र में प्रो० वागीश्वर विद्यालंकार का कितना उच्च स्थान है। मुझे विश्वास है कि इस अनुवाद की बदौलत हिन्दी प्रेमी इस 'छिप कर रहने वाले कवि' की कीमत पहिचान सकेंगे।

लाहौर
६ मार्च १९३२.

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक वि० सा० प्र०

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक कुन्दमाला दिङ्नाग कवि कृत संस्कृत-भाषा के इसी नाम के एक उत्तम नाटक का हिन्दी अनुवाद है। यद्यपि मध्यकालिक संस्कृतसाहित्य में कुन्दमाला का नाम तथा उसके एकाध उद्धरण देखने को मिलते थे तथापि समस्त नाटक तथा उसके लेखक के विषय में बहुत समय से किसी को कुछ भी ज्ञात न था। इस नाटक को बड़े परिश्रम से खोजकर इन दिनों पहिले पहिल सहृदयों के सन्मुख रखने का श्रेय मद्रास के पण्डित श्री रामकृष्ण कवि तथा श्री रामनाथ शास्त्री को है। उन्होंने इसे सन् १६२३ में प्रकाशित किया था। वह संस्करण हमारे दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। वज़ीराबाद के पण्डित श्री जयचन्द्र एम्० ए० शास्त्री कृत संस्कृत टीका तथा पण्डित श्री वेदव्यास एम० ए०, एल० एल० बी० कृत अंग्रेजी अनुवाद, टिप्पणी आदि सहित, नवीन, सुन्दर संस्करण हमारे सामने है। इस संस्करण को तय्यार करने वाले महानुभावों ने प्रशंसनीय प्रयत्न

किया है जिसके लिये वे अवश्य ही पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं। हमने इसी संस्करण के मूल संस्कृत पाठ का हिन्दी अनुवाद पाठकों की भेंट करने का यत्न किया है। अनुवाद कैसा हुआ है, इस सम्बन्ध में कुछ कहने का साहस हम नहीं कर सकते। महाकवि कालिदास ने ठीक लिखा है—

"आपरितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्य प्रत्ययं चेतः॥" (शाकुन्तल)।

मूल ग्रंथकर्त्ता—दिङ्नाग

प्रतीत होता है कि किसी समय संस्कृतके विद्वानों में इस नाटक का विशेष आदर तथा प्रचार था किन्तु कालक्रम से किसी प्रकार बीच में इस का लोप होगया। १३६५ ईस्वी सन् के लगभग विद्यमान, विश्वनाथ कविराज ने अपने बनाये प्रसिद्ध साहित्य ग्रन्थ साहित्यदर्पण के छठे परिच्छेद में इसे उद्धृत(१) किया है।

---

(१) यथा कुन्दमालायाम् (नेपथ्ये) इत इतोऽवतरत्वार्या।
सूत्रधारः— कोऽयं खल्वार्याऽऽह्वानेन साहायकमपि मे संपादयति? (विलोक्य) कष्टमति करुणं वर्तते—
लंकेश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति रामेण लोक परिवाद भयाकुलेन।
निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वीं सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम्॥
(साहित्यदर्पण छठा परिच्छेद)

भोजराजचरित शृङ्गार प्रकाश तथा महानाटक में भी इसका एक पद्य(१) उपलब्ध होता है।

अन्यत्र भी एक दो ग्रन्थों(२) में कुन्दमाला का नाम देखने में आया है, किन्तु इन सभी स्थलों में ग्रन्थ के साथ ग्रन्थकर्त्ता के नाम तक का उल्लेख नहीं किया गया, उसके विषय में कुछ अधिक परिचय की तो बात ही क्या ? स्वयं कवि ने भी प्रस्तावना में अपने नाम (दिङ्नाग) तथा अपने ग्राम के नाम (अरारालपुर) के अतिरिक्त कुछ भी अधिक बात अपने सम्बन्ध में नहीं लिखी। इस दशा में उसके जीवन की घटनाओं के विषय में कुछ प्रकाश डाल सकना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है।

दिङ्नाग या धीरनाग

तंजौर राज्य के पुस्तकालय में कुन्दमाला की जो हस्तलिखित

---

(१) धृते पयः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्या निशीथकलहे हरिणेक्षणायाः प्राप्तं मया विधिवशादिद मुत्तरीयम्॥

(शृङ्गार प्रकाश)

(२) शारदा तनय कृत-भावप्रकाश, काव्य कामधेनु।

प्रति विद्यमान है, उसमें कवि का नाम 'धीरनाग' तथा ग्राम का नाम अनूपराध लिखा है। इससे सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि लेखक का वस्तुतः क्या नाम है? दिङ्नाग की तरह धीरनाग भी एक बौद्ध विद्वान हुवा है, यह बात 'सूक्ति मुक्तावली' से पता चलती है। किन्तु यह नहीं कहा जासकता कि दिङ्नाग तथा धीरनाग किसी एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं अथवा भिन्न भिन्न व्यक्तियों के।

बौद्ध विद्वान-दिङ्नाग (३४५ ई० से ४२५ ई० तक)

डाक्टर सतीशचन्द्र(१) विद्याभूषण ने दिङ्नाग को भारतीय-आधुनिक-तर्कशास्त्र का पिता लिखा है। डाक्टर महोदय ने तिब्बतीय साहित्य के आधार पर इस विषय में बहुत आलोचन किया है, जिसका सार(२) बहुत संक्षेप में निम्न प्रकार है—

मद्रास प्रान्त में, कांची के निकट, सिहवक्त्र नामक नगर के एक ब्राह्मण परिवार में दिङ्नाग का जन्म हुआ था। नागदत्त ने

---

(१) 'भारतीय तर्कशास्त्र का इतिहास' सतीशचन्द्र विद्याभूषण कृत।

(२) 'तत्त्व संग्रह' की अंग्रेज़ी भूमिका। विनयतोष भट्टाचार्य लिखित पृष्ठ सं LXXIV.। बड़ौदा सीरीज़।

उसे बौद्ध-संप्रदाय के हीनयान-मार्ग में दीक्षित किया। तत्पश्चात् वह वसुबन्धु(१) नामक बौद्ध पण्डित का शिष्य हुवा और इससे उसने हीनयान तथा महायान दोनों मार्गों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसे नालन्दा विश्वविद्यालय में आमन्त्रित किया गया—जहां जाकर उसने वहां के प्रसिद्ध आचार्यों को वाद-विवाद में परास्त कर 'वादि पुङ्गव' की उपाधि प्राप्त की। उसका कार्य प्रायः यत्र तत्र यात्रा करना और उसमें बड़े बड़े दार्शनिकों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्हें बौद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित करना था। उसके(२) ग्रन्थों का तिब्बतीय भाषा में अनुवाद 'परमार्थ'(३) ने किया। प्रायः इन सभी ग्रन्थों के मंगलाचरण में दिङ्-नाग ने सुगतबुद्ध को प्रणाम किया है, इन सब बातों से स्पष्ट सिद्ध है कि वह कट्टर बौद्ध तथा हिन्दू संप्रदाय का प्रबल विरोधी था। हमें अत्यन्त आश्चर्य है कि एक कट्टर बौद्ध ने किस प्रकार ऐसा नाटक लिखा जिसकी न केवल कथावस्तु ही हिन्दू

---

(१) वसुबन्धु का काल (२७०ईस्वी सन् से ३६० ईस्वी सन् तक)

(२) क. प्रमाण समुच्चय ख. हेतु चक्र डमरु ग. प्रमाण समुच्चय-वृति घ. न्यायप्रवेश ङ. आलम्बन परीक्षा च. त्रिकाल परीक्षा।

(३) परमार्थ का काल (४९९ईस्वी सन् से ५६९ईस्वी सन् तक)

संप्रदाय की संपत्ति है किन्तु सारा ग्रन्थ ही हिन्दू रंग में रंगा हुवा है। एक वाक्य—नहीं नहीं एक शब्द भी ऐसा नहीं दीखता, जिस में बौद्धपन की झलक हो। विद्वज्जनोचित उदारता की पराकाष्ठा कह कर हम इस विरोध का समाधान नहीं कर सकते, अवश्य ही यहां कुछ अन्य रहस्य निगूढ़ है। हमारा यह तात्पर्य नहीं कि बौद्ध कवि रामचरित्र को अपने ग्रन्थ का विषय नहीं बना सकता। कितने ही बौद्ध कवियों ने इस प्रकार का सुन्दर साहित्य लिखा है; किन्तु उसमें मंगलाचरण आदि के रूप में कहीं न कहीं बौद्धपन प्रस्फुटित अवश्य होजाता है। अथवा यह भी संभव है कि दिङ्नाग ने बड़ी आयु में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली हो और वह उससे पहिले ही कुन्दमाला नाटक लिख चुका हो। अब हम इस पुस्तक के कुछेक ऐसे अंशों पर विचार करते हैं जो हिन्दू धर्म विरोधी कट्टर बौद्ध की लेखनी से नहीं निकल सकते।

क. मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में हिन्दू पद्धति के अनुसार गणेश को प्रणाम किया गया है—

सुरपति सिर मन्दार स्रग् मधुपायी सुख मूल।
पी ले विघ्न पयोधि को श्रीगणपति पद धूल॥

अर्थात् विघ्न विनाशक गणेश जी के चरणों की वह धूल जिस में प्रणाम करते हुवे इन्द्र की मन्दार माला का मकरन्द मिल गया

है हमारे विघ्न-समुद्र को सुखा दे। मंगलाचरण का दूसरा श्लोक शिव की जटाओं के सम्बन्ध में है—

उत्कट तपोमय अग्नि की मानो उठी ज्वालावली
गंगा-तरंग-भुजंग-गृह बल्मीक सी शोभास्थली।
कोमल बिसाङ्कुर चारु विधु को स्थायि-सन्ध्याकाल सी
शिव की जटा सुख दे तुम्हें नव भानु के भा-जाल सी॥

अर्थात् प्रबल तपोमय अग्नि की ज्वालाओं के समान पीली पीली, गंगा-तरंग- रूपी सर्पों के रहने के लिये बल्मीक सदृश, कमल के अंकुर जैसी, चन्द्रकला के लिये सदा स्थिर रहने वाली लाल पीली सन्ध्या वेला तुल्य अथवा उदय होते हुए नवसूर्य के प्रभाजाल-सी शिव-जटा तुम्हें सदा सुखकारी हो। कैसा शुद्ध पौराणिक भाव है। इन बातों की संभवतः हंसी उड़ाने वाला बौद्ध कवि स्वयं विश्वास न करता हुवा क्यों इस प्रकार की कल्पना करे, यह बात हमारी समझ में नहीं आती।

ख. बुद्धभगवान् के समय यज्ञों में पशुहिंसा होती थी इसलिये उन्होंने यज्ञों तथा वेदों के तात्कालिक अर्थों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया था। बौद्धों की दृष्टि में यज्ञ का कुछ भी महत्व या सौन्दर्य न था, किन्तु हम देखते हैं कि कुन्दमाला के रचयिता को यज्ञों तथा वेदों में बड़ी श्रद्धा है। देखिये—

यज्ञाग्नि थी स्थापित, मित्रलोग पाते जहां थे सब सौख्य भोग।
प्रासाद वे चारु, बिना तुम्हारे होंगे उन्हें भी वन-तुल्य सारे ॥

कुन्द० १-६।

केवल एक धनुष के बल सब भूमण्डल अपना कर
सौ यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बना कर।
रघुवंशी दे भुवनभार पुत्रों को चौथे पन में
मोक्षसिद्धि के लिये सदा से आते हैं इस वन में ॥

कुन्द० ४-५।

इस पद्य में कवि ने यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति में अपना विश्वास प्रकट किया है।

दाव-दहन को यज्ञानल-सा, यूप द्रुमों को मान
विहगों के कलरव को कोमल मुनिजन साम-समान।
गौरव से इन वन-हरिणों को समझ तपोधन शान्त
ज्यों त्यों कर पद धरता हूँ मैं इस नैमिश के प्रान्त ॥

कुन्द० ४-४।

इस पद्य में भी दावानल रूप यज्ञाग्नि, द्रुमरूपी यूप तथा पक्षियों के कलरव रूपी सामगान कवि के हिन्दू हृदय की घोषणा कर रहे हैं। इस प्रकरण के ६, ७, ८, ९, १० ११ तथा १२ ये सभी पद्य कहीं सामगान से गूंज रहे हैं तो कहीं होम धूम से व्याप्त हो रहे हैं।

ग. हमारे स्मृति ग्रन्थों में सन्तान तथा सहधर्माचरण—ये दो विवाह के फल प्रतिपादन किये गये हैं। यज्ञ करने का अधिकार भी पति को पत्नी के साथ ही है पृथक् नहीं। नीचे लिखे पद्यों में कविने अपने कर्मकाण्ड ज्ञान का भी परिचय दिया है। देखिये—

सुत, हुत,—ये दो फल पत्नी के बतलाते हैं पण्डित।
पहला तुझ से मिला, दूसरा भी देकर गृह मण्डित॥

कुन्द० अङ्क ६।

दैव-योग से हुवे, आपके, शुभ-दर्शन से प्यारी—
शुद्ध प्रकाशित हुई, यज्ञ में बनी पुनः अधिकारी॥

कुन्द० अङ्क ६।

घ. कवि को प्रणव ओङ्कार का भी ज्ञान है—

मैं ही हूँ ओङ्कार सहचरी—कहते हैं सब मुनिजन।
मुझ से ही उत्पन्न हुवा है सकल चराचर त्रिभुवन॥

कुन्द० अङ्क ६।

ङ. बौद्धधर्म में बालकपन से ही भिक्षु हो जाना श्रेष्ठ समझा जाता है, किन्तु हिन्दू-धर्म में प्रत्येक आश्रम में क्रम से जाने का गौरव है। कुन्दमाला का रचयिता भी आश्रम व्यवस्था का पक्षपाती प्रतीत होता है, भिक्षु-धर्म का नहीं। देखिये —

केवल एक धनुष के बल सब भूमण्डल अपना कर
सौ यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बना कर।
रघुवंशी दे भुवनभार पुत्रों को चौथे पन में
मोक्षसिद्धि के लिये सदा से आते हैं इस वन में॥

कुन्द० ४-५।

च. कवि की दृष्टि में रामचन्द्र विष्णुभगवान के अवतार थे। अपने इस विचार को उसने कई स्थलों पर प्रकट किया है देखिये—

पूज्य महारथ नृप दशरथ की पुत्रवधू सुकुमारी।
राम नाम भगवान् विष्णु की पत्नी सीता प्यारी॥

कुन्द० १-२१

निश्चय ही श्रीराम नाम का हरि यह वन में आया॥

कुन्द० ३-१४।

ग्रन्थ का आर्शीवाद सम्बन्धी अन्तिम पद्य भी शुद्ध हिन्दू भाव का उद्गार है—

शिव ब्रह्मा नारायण सागरगण पावक पवमान।
परम पवित्र वेद ये चारों, तीनों लोक महान॥
विद्यातप भूषित सब कुलपति, सब तापस व्रतधारी।
मंगलकारी हों इस नृप को, गोकुल बढ़े सुखारी॥

कुन्द० अङ्क ६।

इस पद्य पर कुछ टिप्पणी करना सूर्य को दीपक दिखाना है। कुन्दमाला सिर से लेकर पैर तक शुद्ध हिन्दू-नाटक है। किसी अत्यन्त पुष्ट प्रमाण के बिना इसे बौद्ध कवि की कृति मानना हमारे लिये संभव नहीं। कवि के नाम के सम्बन्ध में हमारा विवाद नहीं। हम मानते हैं कि कुन्दमाला का प्रणेता कोई दिङ्नाग नाम वाला कवि ही होगा। किन्तु इस नाटक को उसने जिस समय लिखा तब वह बौद्ध न था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग तथा कुन्दमाला के कर्त्ता दिङ्नाग का निवास-स्थान-भेद भी इस विषय में प्रमाण है।

कालिदास और दिङ्नाग

कई वर्ष हुए, हमने अपने कालिदास-सम्बन्धी निबन्ध में बहुत से प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि कालिदास को शुंग वंश के राजा अग्निमित्र से पृथक् नहीं किया जा सकता। कालिदास का ईस्वी सन् से पूर्व (विक्रम संवत् के प्रारम्भ के लगभग) होना हमारी दृष्टि में २ × २=४ के समान निर्विवाद है किन्तु यह विषय यहां अप्रासंगिक है इसलिये ग्रन्थ विस्तार के भय से हमें अपने इस प्रलोभन को बलात् संवरण करना पड़ता है। हमारी सम्मति में दिङ्नाग कालिदास का समसामयिक

नहीं हो सकता। कुन्दमाला भवभूति कृत उत्तर रामचरित से प्राचीन अवश्य है। वह सीधी बाल्मीकि-रामायण के पाठ के आधार पर बनाई गई है किन्तु उसमें कालिदास के बहुत से पद्यों की छाया स्पष्ट दीख रही है जो यह सिद्ध करती है कि दिङ्नाग कालिदास से अर्वाचीन है। उदाहरणार्थ देखिये—

रघुवंश चतुर्दश सर्ग में सीता को छोड़ कर लक्ष्मण के चले जाने पर कालिदास ने सीता-विलाप का कारुणिक वर्णन किया है—

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव मत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥

ऐसे ही प्रसंग में इसी भाव को कुन्दमालाकार ने इस प्रकार विकसित किया है—

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति।
नृत्यं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्य्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः॥१-१८।

दोनों ही पद्यों में—सीता के दुःख में दुःखी होकर मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है, हरिणों ने हरी घास से मुँह फेर लिया है। कालिदास के पद्य में वृक्ष भी रो रहे हैं, उनके पुष्प अश्रु बन कर बरस रहे हैं, किन्तु कुन्दमाला में शोक विकल

हंसों का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ रहा है। यह सारा भाव श्लोक के तीन चरणों में आगया और चौथा चरण खाली ही रहा जा रहा था तो दिङ्नाग ने उपसंहार करुण में पूरा कर दिया —'तिर्यग्योनि' को प्राप्त ये पशु-पक्षी भी मानव-हृदय से श्रेष्ठ है।

आश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख चुके हैं, किन्तु कालिदास के पद्यों से तुलना करने की दृष्टि से कुछ पुनरुक्ति करनी पड़ती है। आशा है पाठक क्षमा करेंगे—

आ ! अस्त्येतदन्त्यं कुलव्रतं पौरवाणाम्—

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैक पतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृही भवन्ति तेषाम्॥

शाकु०।

दुष्यन्त कहता है कि हां, हम पुरुवंशियों का अन्तिम कुल-कर्त्तव्य तो यही ठहरा न कि जो पृथिवी का पालन करने के लिये पहले समस्त सांसारिक सुखों से समृद्ध राजमहलों में निवास किया करते हैं वे ही पीछे जितेन्द्रिय धर्मपत्नी के साथ वानप्रस्थी हो तपोवन में जाकर वृक्ष की छाया में भी रहते हैं। अब शाकुन्तल के नमूने भी देखिये—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।

भर्त्रा तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥
शाकु० ।

पति के घर पहिले-पहिल जाती हुई पितृ-प्रेम-कातर पुत्री शकुन्तला पिता कण्व से पूछती है कि आप मुझे फिर कब बुलावेंगे? बनवासी कण्व उत्तर देते हैं—बहुत दिनों तक, चार समुद्रों से घिरी पृथिवी की सपत्नी अर्थात् सार्वभौम महाराज की प्रधान महिषी रह कर, सब सांसारिक सुखों का उपभोग कर, दुष्यन्त द्वारा अपने गर्भ से उत्पन्न, योग्य पुत्र पर परिवार तथा राज्य का भार डाल, वानप्रस्थी बन पति के साथ तुम इस शान्त तपोवन में फिर आवोगी। और भी —

प्रथम परिगतार्थस्तं रघुः सन्निवृत्तं
विजयिन मभिनन्द्यश्लाघ्यजाया समेतम् ।
तदुपहित कुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-
न्नहि सतिकुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥ रघु० ।

अज ने इन्दुमती को स्वयम्बर में प्राप्त किया तथा प्रतिद्वन्द्वी सब राजाओं को भी युद्ध में अपने बाहुबल से परास्त किया, यह शुभ समाचार रघु को पहिले ही विदित हो चुका था। उसके पहुंचते ही रघु ने परिवार तथा राज्य का भार उसके कन्धों पर डाल शान्तिमार्ग का आश्रय लिया क्योंकि उत्तराधिकारी के योग्य हो

जाने पर सूर्यवंशी घर में नहीं पड़े रहा करते। इसी भाव को दिङ्-नाग ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

आनाकमेकधनुषाभुवनं विजित्य पुण्यैर्दिवं क्रतुशतैर्विरचय्य मार्गम्।
इक्ष्वाकवः सुतनिवेशित राज्यभारा निःश्रेयसाय वनमेतदुपाश्रयन्ते॥
कुन्द० ४-५।

पद्य का हिन्दी अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है। पाठक देखें कैसी समानता है? आगे चलिये—

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्र नेत्रः।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यानलकाँश्चकार॥ रघु० ६।

अर्थात् यह राजा निरन्तर, एक के बाद दूसरा यज्ञ करता ही रहता है जिसके कारण इन्द्र को सदा ही अमरावती से दूर रहना पड़ता है। परिणाम यह हुआ है कि सदा ही विरहिणी रहने वाली बेचारी शची (इन्द्राणी) के अलक उसके फीके कपोलों पर बिखर गये हैं और वह उन्हें मन्दार की माला से अलंकृत नहीं करती। अब कुन्दमाला की ओर आइये—

एतस्मिन् वितताध्वरे प्रतिदिनं सान्निध्ययोगाद्धरे
स्त्यक्त्वा नन्दनचन्दनावनिरुहानालानतां प्रापिताः।
बिभ्रत्युच्चनिवेशितेन नयनेनाऽऽलोकनीया अमी
मत्तैरावण कण्ठरज्जु वलय न्यास क्षतिं पादपाः॥ कुन्द० ४-७।

सचकितमवधाय कर्णमस्मिन् सुरपतिकर्षणमन्त्र निःस्वनेषु।
विरचयती शची सदैव नूनं स्रजमवधूयवियोग वेणिबन्धम् ॥

कुन्द० ४-८।

अर्थात् "इस नैमिशारण्य में सदा ही यज्ञ होते रहने के कारण इन्द्र को निरन्तर यहीं रहना पड़ता है, जिस से नन्दनवन के बदले अब यहां के वृक्षों में ऐरावत हाथी बंधता है, जिसके गले की रस्सी के रगड़ने के निशान आंख ऊपर उठाकर इनमें देखे जा सकते हैं। इस वन में उच्चारण किये जाते हुवे इन्द्र के आवाहन मन्त्रों को व्याकुलता के साथ सुन सुन कर बेचारी शची पुष्पमाला को छोड़ कर सदा ही वियोग-सूचक एक-वेणी बनाये रहती है।" दोनों ही स्थलों में यज्ञों की निरन्तरता और उनमें इन्द्र की सदा उपस्थिति तथा शची का वियोगिनी होकर पुष्पमाला को छोड़ वियोग सूचक वेणी धारण करना समान है। अध्वर, शची आदि शब्द भी ज्यों के त्यों उभयनिष्ठ हैं। कालिदास का एक और भी श्लोक इस प्रसङ्ग में बार बार हमारी स्मृति में झांक रहा है, उसे भी क्यों नजरबन्द रक्खें—

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठ रज्जुक्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः॥ रघु० ४।

अपनी सेना-सहित रघु जब पहले पड़ाव को छोड़ कर आगे

निकल जाता था तो वहां वनवासी किरात लोग आकर, देवदारु के वृक्षों में गले की रस्सी की रगड़ के निशानों को देख कर उनमें बधे हाथियों की ऊँचाई का अनुमान करते थे। 'कालिदास के सामान्य हाथी 'दिङ्नाग' के सम्बन्ध में आकर ऐरावत हो गये। हिमालय के देवदारु सामान्य वृक्ष बन गये। कण्ठरज्जुक्षत दोनों में कूटस्थ है। भाव में भी पर्याप्त समानता है।

कालिदास के दिलीप को देखिये—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमंदेहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ रघु० १।

दिङ्नाग का राम इसी का प्रतिबिम्ब है—

व्यायाम कठिनः प्रांशुः कर्णान्तायतलोचनः।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्व्यक्तं दशरथात्मजः॥ कु० ३-१९।

'दिङ्नाग' के कर्णान्तायतलोचनों से पाठक विस्मित न हों। वे उसके अपने नहीं हैं। किसके हैं—वह देखिये—

कामं कर्णान्त विश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्तातु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थ दर्शिना॥ रघु० ५।

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक के उत्तरार्ध पर दृष्टि डालिये—

अथात्मनः शब्द गुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्यमिथः सजायां रामाभिधानो हरि रित्युवाच ॥
रघु० १३-१।

अब दिङ्नाग के रामचन्द्र जी का दर्शन कीजिये—

व्यक्तः सोऽयमुपागतोवनामिदं रामाभिधानो हरिः॥ कु० ३-१४।

मल्लिनाथ का भ्रम

मेघदूत के—

'स्थानादस्मात्सरस निचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं ।
दिङ्नागानां पथिपरिहरन स्थूलहस्तावलेपान् ॥'

इस पद्य में 'निचुल' तथा 'दिङ्नाग' इन शब्दों को इकट्ठा पड़ा देख कर मल्लिनाथ आदि व्याख्याकारों को शब्द-शक्ति-मूल ध्वनि के कारण भ्रम उत्पन्न हो गया। उन्होंने समझा कि हो न हो कलिदास ने यहां अपने काव्य में दोष दिखलाने वाले 'दिङ्नाग' कवि से बचे रहने के लिये मेघ को सावधान किया है। इस भ्रम का कारण यह है कि दक्षिणावर्त्तनाथ तथा मल्लिनाथ ऐसे समय में हुवे जब कि दार्शनिक साहित्य में वाचस्पति मिश्र आदि विद्वान् दिङ्नाग के विचारों का जहां तहां खण्डन करके उसके नाम को इतना प्रसिद्ध करचुके थे कि 'दिङ्नाग' शब्द सुनते ही

पहली प्रतीति इस बौद्ध विद्वान के सम्बन्ध में उत्पन्न होती थी। दैवयोग से इसी पद्य में 'निचुल' शब्द भी मिल गया। यह शब्द भी एव कवि का 'उपनाम' है। फिर क्या था? व्याख्याकारों ने पूरे टूर्नामैण्ट की व्यवस्था करडाली। उन्होंने कालिदास, दिङ्नाग तथा निचुल के न तो कालादि का निर्णय किया, न देशादि का विचार किया, और मेघदूत के उक्त पद्य को राजा भोज का दरबार बना डाला, जिसमें कई कई शताब्दी के अन्तर से उत्पन्न हुवे कवियों को भी एक स्टेज पर ला खड़ा किया। हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि कुन्दमाला का दिङ्नाग किस प्रकार कालिदास का ऋणी है? इस अवस्था में कालिदास को उससे भय करने का कोई कारण नहीं हो सकता। मल्लिनाथ इतना पुराना नहीं कि हम उसे कालिदास का अत्यन्त निकटवर्ती मान कर इस विषय में उसके शब्दों को आंख मींच कर स्वीकर करने को बाधित हों। हमारी सम्मति में इस पद्य में से उक्त ध्वनि निकालना भ्रम मूलक है।

बस एक ही उदाहरण और, फिर बस—

कालिदास की विरहिणी शकुन्तला तथा दिङ्नाग और भवभूति की वियुक्ता सीताओं की सुध लेते जाइये—

'शाकुन्तल' में कालिदास ने लिखा है—

वसने परिधूसरेवसाना नियमक्षाममुखीधृतैक वेणी।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीलाममदीर्घं विरहव्रतं बिभर्त्ति ॥ शाकु०।

आपाण्डुरेण मयि दीर्घ वियोगखेदं लम्बालकेन वदनेन निवेदयन्ती।
एषा मनोरथशतैः सुचिरेण दृष्टा क्वापि प्रयाति पुनरेव विहाय सीता॥
कुन्द० ४१-३।

परिपाण्डु दुर्बल कपोलसुन्दरं दधती विलोल कबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्त्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥
उत्तर० ३-४।

दुश्चारिणी होने का मिथ्या दोष जान बूझ कर लगा, अपमान पूर्वक निकाल देने वाले उसी लम्पट पति को पुनः प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या करने के कारण जिसके भरे हुवे सुन्दर कपोल क्षाम अर्थात् दुर्बल हो गये हैं, अपने शरीर की सुधबुध न रहने से जिसके वस्त्र मलिन हो रहे हैं, जिसने सब शृङ्गारों को छोड़, सिर के बालों को यूंही इकट्ठा कर बांध लिया है, ऐसी सती साध्वी शकुन्तला को देखकर विलासी दुष्यन्त का हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में संतप्त होकर शुद्ध हो जाता है, कलुषित वासना के स्थान में पवित्र प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, मर्त्यलोक के प्राणी स्वर्ग सुखोपभोग करने लगते हैं। कालिदास की शकुन्तला के बाह्यरूप को दिङ्नाग ने देखा और उसका चित्र अपने चित्रपट पर बनाडाला परन्तु उसमें वह आदर्श हिन्दू नारी का हृदय न

बना सका। उसकी सीता के भी फीके मुख मण्डल पर शिथिल अलक बिखर रहे हैं, वह भी अकारण परित्याग करने वाले राम के ही दीर्घ विरह में घुली जारही है किन्तु राम समझते हैं कि सीता उनसे रूठ सकती है तभी तो वह इतने दिनों बाद दीखने पर भी उन्हें छोड़कर अभिमान से कहीं चली जारही हैं। यहां दो हृदयों की अभिन्नता नहीं है। वे अब भी एक दूसरे से अज्ञात हैं, तथापि इस विरह वर्णन में वेदना भरी हुई है जो सहृदयों के हृदयों को विदीर्ण कर देती है। दिङ्नाग का और बाल्मीकि का राम एक ही है। वह बड़ा कठोर कर्त्तव्यपालक, अपनी भूल को कभी न स्वीकार करने वाला, हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक प्रेरित होने वाला हैं। उसे दुष्यन्त की तरह अपने अत्याचार पर पश्चात्ताप नहीं। वह अपने किये सीता निर्वासन को तब भी ठीक ही समझता है जब वह अन्त में सीता को स्वीकार कर रहा है। भवभूति ने सीता का जो चित्र खींचा है वह समस्त संस्कृत-साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। उसके कपोल भी पीले तथा दुबले होगये हैं उनमें लावण्य नहीं रहा। उनपर भी शिथिल अलकें छुट पड़ी हैं। इकठ्ठे करके बांधे हुवे बाल कमर पर हिल रहे हैं। वह मानों शरीर धारण किये हुवे करुणारस अथवा मूर्त्तिमती साक्षात् विरहव्यथा ही बनी हुई है। विरहिणी सीता के मुख के सम्बन्ध में दो विशेषण देकर कवि ने पाठक

की कल्पना शक्ति को जागृत कर दिया और करुणरस की मूर्त्ति तथा शरीर धारिणी विरहव्यथा का चित्र रुचिभेद से नाना प्रकार का बना देने के लिये उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया। यही तो बिन्दु में सिन्धु का दर्शन कराना है। विषय बहुत बढ़ता जारहा है, इस लिये विवश होकर इसे यहीं समाप्त करते हैं।

कुन्दमाला तथा उत्तर रामचरित

संस्कृत साहित्य में भवभूति-कृत उत्तररामचरित का बहुत ऊँचा स्थान है। कालिदास के जगत्प्रसिद्ध शाकुन्तल को छोड़, कोई नाटक इस से टक्कर नहीं ले सकता। इसमें भवभूति ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। यह करुण रस का अद्वितीय नाटक है। उत्तररामचरित को पढ़कर वस्तुतः ही 'पत्थर भी रोने लगते हैं और वज्र का भी हृदय टूक टूक हो जाता है'। 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' यह उक्ति मानो अपनी कविता के सम्बन्ध में ही भवभूति के मुख से निकली थी। इस उत्तररामचरित के आधार पर जो गौरव भवभूति को आज तक मिलता रहा है यद्यपि वह उस का वस्तुतः अधिकारी है तथापि 'कुन्दमाला' के नवीन आविर्भाव ने भी रसिकों के अन्तःकरण को उत्तरचरित की अपेक्षा कुछ कम आल्हादित नहीं किया। उत्तरचरित को पढ़ते समय

एक प्रश्न हमारे हृदय में सदा उठा करता था और उत्तर न सूझता था। सीता-निर्वासन का प्रसङ्ग स्वभाव से ही अत्यन्त करुणोत्पादक है। इतने बड़े महाराज की राजरानी भ्रमण के लिये खुशी खुशी बन आती है। उसका पति उसकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये उत्सुक रहता है इसका उसे अभिमान है, किन्तु लक्ष्मण के एक शब्द—नहीं नहीं वज्राघात से उसका सब अभिमान क्षणभर में चकनाचूर होजाता है। रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में यह सारा प्रकरण अत्यन्त पढ़ने योग्य है। हमें आश्चर्य था कि भवभूति ने करुणरस का परिपाक करने के लिये ऐसे अद्वितीय प्रसङ्ग को क्यों अछूता छोड़ दिया। अब कुन्दमाला को पढ़ कर हमारी यह ग्रन्थी स्वयं ही सुलझ गई। दिङ्नाग ने इस दृश्य को ऐसी खूबी से वर्णन किया है कि भवभूति को उससे कुछ अधिक कह सकने का साहस ही न हुवा। उत्तरचरित के तीसरे अङ्क में छायासीता की रचना की गई है। भवभूति ने इस छायासीता से क्या प्रयोजन सिद्ध किया है यह यहां लिखना सम्भवतः अप्रासंगिक होगा अतः इस विषय को हम भविष्य के लिये सुरक्षित रखते हैं किन्तु यहां यह अवश्य कह देना चाहते हैं कि उत्तरचरित में वर्णित छाया सीता भवभूति की अपनी सूझ न होकर दिङ्नाग से याचित है। उत्तर-

चरित के सातवें अङ्क में नाटकान्तर्गत नाटक भी कुन्दमाला के छठे अङ्क का परिमार्जित रूपमात्र है । भवभूति की बन देवता वासन्ती दिङ्नाग की वनदेवता मायावती की ही प्रतिनिधि है। जिस के द्वार पर भवभूति जैसा वश्यवाक् कवि भी भिक्षुक बन कर खड़ा है उसकी महिमा का तो कहना ही क्या ? हम एक दो उदाहरण ही इस सम्बन्ध में दे कर इस विषय को समाप्त कर देना चाहते हैं। उत्तरचरित के तीसरे अङ्क में—अपने निर्वासन के १२ वर्ष पश्चात् सीता ने अकस्मात् श्रीराम के दर्शन किये हैं और अपनी संगिनी तमसा से कहा है कि हे भगवती ! क्या आप जान सकती हैं कि आज इस समय मेरे हृदय की क्या दशा हो रही है ? तमसा ने दुनिया खूब देखी है वह सीता को पुत्री की तरह मानती है। उस का उत्तर सुनिये—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनात्स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयित करुणैर्गाढ करुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ।। उत्तर० ३ ।

सीता को वन में अकेली छोड़ कर लक्ष्मण लौट गया। उसे आशा थी कि शीघ्र ही राम को अपने किये पर पश्चात्ताप होगा, उस पर भी सीता का अन्तिम सन्देश सुन कर तो उनके धैर्य का

बांध अवश्य टूट जायेगा संभवतः वशिष्ठ कौशल्यादि वृद्ध जन भी उन्हें समझाएंगे और वे शीघ्र ही सीता को वन से वापिस बुलालेंगे। इसी आशा से उसने सीता का सन्देश उन्हें सुनाया। रघुवंश में लिखा है—

अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात् किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीतापरिदेवनान्त मनुष्ठितं शासन मग्रजाय ॥

रघु० १४।

जब लक्ष्मण के हृदय की यह दशा थी तो स्वयं सीता की तो बात ही क्या कहनी ? वह बेचारी प्रतिदिन एकान्त में बैठकर अयोध्या के मार्ग की ओर एकटक दृष्टि लगाये स्वयं राम अथवा लक्ष्मण या किसी राजदूत की ही बाट जोहा करती होगी। सूर्यास्त हो जाने पर बाह्य संसार की तरह उसका अन्तःकरण भी नैराश्यान्धकार से घिर जाता होगा और अगले दिन प्रकाश की प्रथम रेखा से कमलिनियों के साथ उसकी हृदयकलिका भी खिल उठती होगी। पहले कुछ दिनों उसने घर के ही बन्धुओं द्वारा राम को समझाये जाने की कल्पना की होगी। किन्तु किसी दूत के न आने पर सोचा होगा कि पराये घर (सुसराल) में उस दुखिया के दुःख में दुखी होने की किसे पड़ी। वे सब तो राम के दूसरे विवाह की चिन्ता कर रहे होंगे इत्यादि। फिर उसने मिथिला की ओर आशा लगाई होगी कि अब तक तो मेरे निर्वासन का

पिता माता को भी पता चल गया होगा और वे अयोध्या आये होंगे—उन्होंने श्रीराम को सब तरह समझाया होगा अब वे सब लोग मुझे लेने आते होंगे। मिथिला से अयोध्या आने जाने के दिन गिन कर वह रोज़ उंगलियों पर हिसाब लगाती होगी। किन्तु वे दिन भी निकल गये। वसन्त के सुरभित मलयपवन, ग्रीष्म के लम्बे दिन, बरसात की भयंकर घनगर्जनायें, शरद की सुखद चन्द्रिकायें, शिशिर हेमन्त की लम्बी रातें—बारी बारी से चली गईं परन्तु अयोध्या या मिथिला से कोई न आया। सीता सब ओर से सर्वथा निराश हो गई। "नैराश्यं परमं सुखम्" नैराश्य ने उसके हृदय को शनैः शनैः पक्का कर तटस्थ बना दिया। अब वह सदा राम के विषय में ही नहीं सोचती रहती। उसे उधर से कोई आशा नहीं। इस दशा में एक नहीं, दो नहीं, पूरे बारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन वह अपने पुत्र लव कुश की बारहवीं सालगिरह मनाने के लिये दण्डक बन में आई। अपने पूर्व परिचित स्थानों को देख कर उसे राम की स्मृति हुई। किस राम की? जिसने बिना अपराध उसका परित्याग कर दिया था। इस विप्रिय के स्मरण से उसका हृदय कलुष-सरोवर के जल की तरह उथल पुथल हो गया। इसी समय उसके कानों में विमान से आते हुवे श्रीराम की आवाज(१) आई। दीर्घ

---

(१) इस प्रसंग में भी उत्तर चरित तथा कुन्दमाला के शब्दों तथा

वियोग में अकस्मात् संयोग हो जाने के कारण उसका हृदय स्तब्ध हो गया। वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गई, उसके मस्तिष्क ने सोचना छोड़ दिया। उसे हलकी-सो मूर्छा आ गई। वह खड़ी रह गई। स्तम्भ होने से हृदय सरोवर की उथल पुथल शान्त हो गई, गाद नीचे बैठ गई, स्वाभाविक सुजनता के कारण अन्तः-करण निर्मल हो गया। अब उसे सूझा कि उसे निकाल कर स्वयं राम भी सुखी नहीं हैं। उनका मुख सूख गया है शरीर में

भावों की समानता ध्यान देने योग्य है—

उत्तर चरित में "सीता—अहो! जलभर भरित मेघ मन्थर स्तनित गंभीर मांसलः कुतोनु भारती निर्घोषो म्रियमाणकर्ण विवरा-मपि मां मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकापयति। स्वरसंयोगेन प्रत्यभिजानामि ननु आर्यपुत्रेणैवैतत् व्याहृतमिति।"

उत्तर० अङ्क

कुन्दमाला में "सीता—को नु खल्वेष सजल जलद स्तनितगंभीरेण स्वर विशेषेण अत्यन्दुःख भाजनमपि मे शरीरं रोमांचयति। निरूपयामि तावत् क एषइति। अथवा न युक्तं मम अज्ञात्वा परमार्थमस्थाने दृष्टिं विसर्जयितुम्। किमत्रज्ञातव्यम्? माव नाहयति मे शरीरं परपुरुष शब्दो रोमांचप्रहर्षेण।"

कुन्दमाला ३ अङ्क।

वह कान्ति नहीं है। वे वियोग में बहुत दुबले(२) हो गये हैं। हिन्दू नारी का हिंदूत्व जाग उठा। वह अपना दुःख भूल गई। दूसरे का दुःख उसका दुःख हो गया। सीता राम के दुःख से दुःखी हुई, किन्तु इस दुःख में आत्मीयता नहीं थी। वह जानती थीं कि अब राम उसके कोई नहीं। वे जैसे सारी प्रजा(३) के राजा हैं वैसे ही उसके भी। उसे उनकी दशा देखकर करुणा हुई। "मैत्री करुणा मुदितो पेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।' चित्त प्रसादन के लिये आवश्यक है कि दुःखी के विषय में साधक की भावना करुणात्मक हो। किन्तु वह यहां रुक न सकी। सांसारिकता ने उसे घेर लिया। वह पेचारी कोई नियम पूर्वक सिद्ध योगिनी (४) न थी।

---

(२) नव कुवलय स्निग्धै रंगै र्देदन्नयनोत्सवं
सततमापिनः स्वेच्छा दृश्यो नवो नव एव सः
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परि दुर्बलः
कथमपिस इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः ॥उत्तर० ३ अंक।

(३) निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥र.स. १४

(४) उसे तो वियोग ने योगिनी बना दिया था—
आहारे विरतिः समस्त विषय ग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः।

दाम्पत्य प्रेम ने आकर उसके हृदय को द्रवित—पानी पानी—कर दिया। राम के हृदय से उसकी भिन्नता न रही। भवभूति ने सीता के हृदय का यह चित्र तमसा द्वारा खिचवाया है। सहृदयता की पराकाष्ठा है। किन्तु इस चित्र को बनाने में भी भवभूति दिङ्नाग का ऋणी है। देखिये—

"सीता—......ओहो! देख लिया—इससे प्रसन्नता है. इसी ने तो मुझे सदा के लिये निकाल दिया—इससे क्रोध है यह कितना दुबला होगया है? इससे व्याकुलता है, निठुर है—इससे अभिमान है.....आर्यपुत्र के इस एक दर्शन से मेरे हृदय में न मालूम कैसे कैसे विचार उठ रहे हैं?

और एक उदाहरण लीजिये—

> व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपिहेतु
> नखलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
> विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
> द्रवतिच हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥ उत्तर० २-११।

भवभूति के इस श्लोक को पढ़ते ही दिङ्नाग का निम्नलिखित

> मौनं चेदमिदं च शून्यमधुना यद्विश्वमाभाति ते
> तद् ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किंवा वियोगिन्यसि॥

साहित्यदर्पण ४ परिच्छेद।

पद्य आखों के आगे घूमने लगता है। पिता पुत्र की तरह दोनों की आकृति में पर्याप्त सादृश्य है—

आपातमात्रेण कयाऽपि युक्त्या सम्बन्धिनः सन्नमयन्ति चेतः।
विमृश्यकिं दोषगुणानभिज्ञश्चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्तः॥

कुन्द० ५-१० ।

सीता के शब्दों में लव कुश का वर्णन भी दोनों पुस्तकों में देखिये—

उत्तर रामचरित में "सीता—किंवा मया प्रसूतया, येनैतादृशं मम पुत्रकयो रीषद्विरलधवलदशन कुड्मलोज्ज्वलं, अनुबद्धमुग्धकाकली विहसितं, नित्योज्ज्वलं मुख पुण्डरीक युगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।" उत्तर० ३ अङ्क।

कुन्दमाला में "सीता—यथा यथा द्वौ दारकावीषत्समुद्भिन्न दशनांकुर कोमलेन, वदनेन ममभुखमालोकयन्तौ प्रहसतः, अत्यन्त कोमलेनालापेन तादृशं शब्दापयतः, तथा जानामि तस्य मौग्ध्ये निमज्जामीति।" कुन्द० २ अङ्क।

लव कुश को देखते ही उनमें रामचन्द्र जी की स्वभाव से ही पुत्रबुद्धि उत्पन्न हो जाना—यह घटना भी इन दोनों नाटकों में इस प्रकार वर्णन की गई है कि एक दूमरे की बिम्ब प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है।

इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं, किन्तु विस्तार भीरुता से यहीं विराम करना पड़ता है। इसी प्रसङ्ग में हम बाल्मीकि रामायण, कुन्दमाला तथा उत्तर चरित के कुछ उद्धरणों से यह प्रमाणित करना चाहते थे कि कुन्दमाला रामायण पर अवलम्बित है तथा उत्तर चरित कुन्दमाला का संशोधित रूप है और उससे अर्वाचीन है किन्तु इस समय अवसर न होने के कारण इस विषय को भविष्य के लिये छोड़ते हैं।

सीता निर्वासन

कुन्दमाला की प्रथम मुख्य घटना राम कृत सीता-निर्वासन है। हम देखते हैं कि पुराने सारे साहित्य में राम के इस काम का समर्थन किसी भी लेखक ने नहीं किया। मनुष्य समाज के लिखित इतिहास में शायद यह पहला अत्याचार है, जो पुरुष जाति ने प्रबल होकर स्त्री जाति पर किया है। सभी न्यायप्रिय कवि अपने काव्य नाटकादि लिख लिख कर और उसमें सीता राम का पुनर्मिलन वर्णन करके इस कलङ्क को पुरुष के मस्तक से पोंछ देने का भर-सक यत्न करते आरहे हैं, किन्तु वह चन्द्रमा के कलङ्क की तरह ही शायद सदा के लिये स्थिर होगया है। आजकल प्रजातन्त्रवाद (प्रजा के बहुपक्षानुसार शासन व्यवस्था) का बोलबाला है। इस-लिये शायद कोई राजनीतिज्ञ महाशय इस घटना को पेश कर

भारत को प्राचीन काल से प्रजातन्त्र का उपासक सिद्ध करना चाहें परन्तु हम इस काम में उन की दाद नहीं दे सकते । निरपराध को दण्ड देना कभी भी न्याय नहीं, चाहे वह बहुपक्षानुसार दिया जावे अथवा अल्पपक्षानुसार । रघुवंश में कालिदास ने वाल्मीकि के मुख से राम के इस कार्य की निन्दा इस प्रकार करवाई है—

उत्खात लोकत्रय कण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेप्यविकत्थनेऽपि ।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्ता वस्त्येवमन्युर्भरताग्रजे मे ॥ रघु० १४ ।

अर्थात् यद्यपि राम ने त्रिलोकी के शत्रु रावण का संहार किया है, वह सत्य प्रतिज्ञ है, अपने मुँह मियांमिठ्ठू नहीं है, तोभी तुम जैसी निरपराधा पर अत्याचार करने के कारण मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता ।

भवभूति ने अपने रोष को जनक द्वारा प्रकट करवाया है । जनक कहते हैं—

ओह ! दुरात्मा नागरिकों की निर्दयता तो देखो । और राम ने भी कैसी जल्दबाज़ी की है ? सीता पर किये गये इस अत्याचार रूपी वज्राघात को मैं ज्यों ज्यों विचारता हूँ त्यों त्यों मेरा क्रोधानल चाप अथवा शाप द्वारा भड़क उठना चाहता है ।

स्वयं राम सीता-निर्वासन के सम्बन्ध में अपने आपको अपराधी न मानते हुवे भी उस दोष को प्रजा के मत्थे ज़रूर

मढ़ते हैं। जादू वह, जो सिर पर चढ़ कर बोले। भवभूतिने राम ही के मुख से उनके कार्य की निन्दा किस कौशल से करवाई है—"हे भगवन्तः पौर जानपदाः !—

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
चिर परिचितास्तेते भावास्तथा व्यथयन्तिमा-
मिदमशरणै रद्याऽस्माभिः प्रसीदत रुद्यते" ॥

अर्थात् 'हे नागरिक भद्र पुरुषो ! तुम्हें यह पसन्द न था कि देवी सीता घर में रहें' तो मैंने तुम्हें भगवान् की तरह मान कर, तुम्हारी इच्छा को अपनी इच्छा बना कर तृण की तरह उन्हें बन में फेंक दिया और तुम्हारे प्रति हृदय से भी विश्वास-घात न करने के लिये मैंने उन्हें हृदय में भी स्थान न दिया। किन्तु आज उन सब पुरानी स्मृतियों ने मिल. मुझे असहाय अवस्था में आकर घेर लिया है। मैं विवश हो कर आज अपनी, निरपराध दण्ड भोगने वाली प्राणप्यारी के लिये रो उठा हूँ। मेरे इस कसूर को माफ करना'। ओह ! कैसी मार्मिक वेदना है ? इस छोटे से जीवन में संयोग क्षणिक तथा वियोग शाश्वत है। यदि वह क्षणिक संयोग भी सकुशल न निभ सके तो इससे बढ़ कर दौर्भाग्य क्या होगा ? अस्तु, हमने देख

लिया कि राम स्वयं सीता-निर्वासन को निर्दोष नहीं समझते। तो फिर उन्होंने यह किया क्यों ? हमारी सम्मति में इसके दो कारण थे। १. आचार सम्बन्धी २. राजनीति सम्बन्धी।

आचारसम्बन्धी—कहते हैं कि जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। 'यथाराजा तथा प्रजा।' जब रामचन्द्र जी ने अपने गुप्तचर से. यह सुना कि—

"अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथाहि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥"

अर्थात् प्रजा के लोग कहते हैं कि जब राम ने रावणगृह-निवासिनी सीता को स्वीकार कर लिया तो हमारी स्त्रियां भी यदि इसी प्रकार दूसरों के यहां चली जाया करेंगी तो हमें अपनी छाती पर पत्थर रख कर वह सब सहना पड़ेगा, क्योंकि जब राजा के घर में स्वयं यह अन्धेर है तो वह दूसरों को कैसे रोक सकेगा। इन शब्दों में भावी अनाचार के भयंकर दृश्य को राम के हृदय ने देख लिया तो वह कांप उठा। उसके नाम से प्रजा में अनाचार का प्रचार न हो—इसके लिये वह बड़े से बड़ा बलिदान करने को उद्यत होगया। राम को अपनी लोकनिन्दा का तनिक भी भय नहीं। रावण और परशुराम से लोहा लेने वाले महावीर को किससे डर ? किन्तु देश के आचार का ऊंचा आदर्श मलिन न

होजावे—इसका उन्हें बड़ा भारी भय है। उन्होंने प्रजा की आंखें खोल दीं कि किसी का भी आचार सम्बन्धी अपराध क्षमा नहीं हो सकेगा।

राजनीति सम्बन्धी कारण—भवभूति ने उत्तर चरित में इस घटना की राजनीतिक कारण के रूप में व्याख्या करने की चेष्टा भी की है। नाटक के प्रारम्भ में ही अष्टावक्र ने वशिष्ठ जी का सन्देश(१) श्रीराम को सुनाया है कि 'हम जामाता (ऋष्यशृंग) के यज्ञ में रुक रहे हैं, तुम अभी अनुभवशून्य बालक ही हो, राज्यासन पर अभी नये ही आरूढ़ हुवे हो—शासन के हथकण्डों को नहीं समझते। प्रजा पुराने राजा से तो प्रेम करने लगती है, वह उसकी भूलों को भी क्षमा कर देती है, किन्तु तुम अभी नये ही हो। ऐसे समय बहुत से स्वार्थी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जाल फैलाया करते हैं जिसका अनुभव तुम्हें अपने पहिले अभिषेक की तैयारी के समय प्राप्त हो चुका है। नये राजा को पदच्युत(२) कर सकना बड़ा सरल होता है इसलिये ऐसी दशा

---

(१) जामातृ यज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनु रंजनेस्या स्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥
उत्तर० १-११।

(२) अचिराधिष्ठित राज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।

में शासन की सफलता का एक मात्र सूत्र 'प्रजानुरंजन, है इसे गांठ बांध लो। ऐसा न हो कि तुम्हारे अकारण ही गुप्त शत्रु किसी प्रश्न को खड़ा करके प्रजा में या तुम्हारे राज कर्मचारियों में ही दो दल बना डालें। राज कर्मचारियां में पड़ी थोड़ी-सी भी फूट(३) राजा का सर्वनाश कर डालती है। ऐसे समय में दमन करने से भी विद्रोहाग्नि धीरे धीरे सुलगती हुई कभी कभी एकदम भड़क कर काबू से बाहर होजाती है, इसलिये कोई इस प्रकार का मौका शत्रुओं को न देना चाहिये। मालूम होता है कि राज-कर्मचारियों में एक दल रामविरोधी था। अच्छे से अच्छे आद-मियों के भी शत्रु हुवा ही करते हैं। उस दल ने सीता-अपवाद को आड़ बनाकर यह षड्यन्त्र रचा। वे समझते थे कि राम खूब जानते हैं कि सीता निर्दोष है, वे उसे प्रेम भी बहुत करते हैं, उन्हें रावण-विजय से अपने बाहुबल का भरोसा मी पूरा है, इसलिये वे सीता का परित्याग कभी न करेंगे। उधर हमारे आचारहानि-सम्बन्धी आन्दोलन में बहुत से भोले भाले

नव संरोहण शिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥ मालविकाग्निमित्र।

(३) अणुरप्युपहन्ति विग्रहः प्रभुमन्तः प्रकृति प्रकोपजः।
सकलं हि हिनस्तिभूधरं तरु शाखान्त निघर्षजोऽनलः॥

किरात०।

कुन्दमाला

धर्मपरायण ऋषिमुनि महात्माओं की सहानुभूति होजाना बिल्कुल स्वाभाविक ही है। धार्मिक पक्ष की सहानुभूति होने से धीरे धीरे प्रजा भी हमारे साथ हो ही जावेगी और इस प्रकार हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकेंगे 'महाजन विरोधेन कुंजरः प्रलयंगतः'। किन्तु श्रीराम ने वशिष्ठ जी के उपदेश का अनुसरण कर सीता को निकाल दिया और उन विरोधियों की सारी चाल विफल करदी। वे कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि घटनाचक्र इस प्रकार घूम जावेगा। उन्होंने अपने हथियार डाल दिये। श्रीराम को इस विषय में कृतकार्यता प्राप्त हुई, किन्तु बहुत बड़े वैयक्तिक त्याग के बदले में।

ऊपर लिखे इन दोनों रूपों में हमने इस घटना को समझाने का यत्न किया है, किन्तु साथ ही हम यह भी अवश्य कहेंगे कि इन दोनों कारणों के रहते भी सीता के प्रति किया गया अन्याय न्याय नहीं माना जासकता।

गुरुकुल कांगड़ी
५-२-३२

—वागीश्वर विद्यालङ्कार

नाटक के पात्र

राम——कथानायक, अयोध्यापति

लक्ष्मण—राम का छोटा भाई, सीता का देवर

सुमन्त्र—सारथि

वाल्मीकि
काश्यप
बादरायण
कण्व } आश्रमवासी ऋषि ।

कौशिक—राम मित्र विदूपक ।

कंचुकी—राम के अन्तःपुर का अधिकारी ।

कुश और लव—राम के दो पुत्र ।

सीता—राम की पत्नी, कुश लव की माता ।

मायावती—सीता की दण्डकारण्य सहचरी वन देवी ।

वेदवती
यज्ञवती } वाल्मीकि के आश्रम की मुनिकन्यायें ।

तीन महादेवियां—कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा ।

तीन वधुएं—माण्डवी=भरत की पत्नी । उर्मिला=लक्ष्मण की पत्नी । श्रुतकीर्त्ति=शत्रुघ्न की पत्नी ।

पृथ्वी—पृथिवी की अधिष्ठात्री देवी ।

पृथ्वी की सहचारिणी—अन्य देवियां ।

तिलोत्तमा—स्वर्ग की अप्सरा ।

नैमिषारण्य—गोमती के किनारे तपोवन ।

वाल्मीकि का आश्रम—गंगा के किनारे ।

कुन्दमाला

प्रथम अङ्क

सुरपति-सिर-मन्दार-स्रक्-मधु-पायी सुख मूल ।
पीलें विघ्न-पयोधि को श्री गणपति-पद-धूल ।१॥

उत्कट तपोमय अग्नि की मानो उठी ज्वालावली,
गङ्गा-तरङ्ग-भुजङ्ग-गृह वल्मीकसी शोभा-स्थली ।
कोमल-विसाङ्कुर-चारु-विधु को स्थायि-सन्ध्याकाल सी,
शिव की जटा सुख दे तुम्हें नव-भानु के भा-जाल सी ॥२॥

सूत्रधार—सभा का आदेश है कि अरारालपुर-निवासी आदरणीय कवि श्री दिङ्नाग ने 'कुन्दमाला' नामक जो नाटक बनाया है मैं आज उसे खेलूं तो अभी चलूं इस अभिनय में सहायकआर्या को बुलाकर रङ्गशाला में उतरू ।

(नेपथ्य में)

'आर्ये ! इधर आइये इधर'

सूत्रधार—हैं यह कौन है जो आर्या के बुलाने में मेरी सहा-

यता सी कर रहा है। (देख कर) हाय हाय कैसा कारुणिक दृश्य है ?

वन से हर घर क्योंकि लेगया अपने रावण
छोड़ी पति ने अतः लोक निन्दा के कारण।
इस, निर्वासित, गर्भ-भार से थकित प्रतिक्षण
सीता को वन लिये जा रहा है वह लक्ष्मण ॥३॥

(सूत्रधार जाता है)

स्थापना समाप्त

(रथ पर सवार सीता, लक्ष्मण और सारथि का प्रवेश)

लक्ष्मण—आर्यें, इधर आइये इधर। घने वृक्ष और लता-जालों से गुंथे हुवे गङ्गातट के इन वनों में रथ आगे नहीं बढ़ सकता, आप यहीं उतर लीजिये।

सीता—वत्स लक्ष्मण ! घोड़े इतनी तेज़ी पर हैं कि मैं थरथर कांप रही हूँ। खड़ी भी नहीं हो सकती, उतरना तो दूर रहा।

लक्ष्मण—सुमन्त्र, घोड़ों को ज़ोर से रोको।

सुमन्त्र—गाना सुनने के रसिया ये घोड़े रोके भी नहीं रुकते। देखिये—

कहीं सुनाई पड़ते समीप ही आकृष्ट हो कोमल हंसनाद से।
न मान घोड़े कुछ बागडोर को चले अहो चंचल और वेग से ॥४॥

लक्ष्मण– सुमन्त्र, घोड़े बहुत ज़ोर कर रहे हैं। ऊंच नीच कुछ भी न देख ये रथ को गंगा की ढाल में गिरा देंगे। इन्हें अच्छी तरह रोको।

सुमन्त्र—(लगाम खींचता है)

लक्ष्मण– भाभी उतरो, रथ थम गया।

सीता—(उतरकर इधर-उधर टहलती है)

लक्ष्मण—बहुत बड़ी मंजिल तय करके घोड़े थक गये हैं। सुमन्त्र, इन्हें आराम कराओ।

सुमन्त्र—जो आज्ञा महाराज! (रथ पर सवार हो निकल जाता है)

लक्ष्मण—भाईजी-अथवा महाराज ने मुझे आज्ञा दी है कि 'हे लक्ष्मण ! रावण के घर रहने के कारण तुम्हारी भाभी के चरित्र में शङ्का करते हुवे प्रजाजन मुंह आई हांक रहे हैं। मैं एक सीता के लिये इक्ष्वाकु के निर्मल कुल को कभी कलङ्कित न होने दूंगा। तुम्हारी भाभी ने दोहद के रूप में भागीरथी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की ही है। तुम सुमन्त्र से रथ जुतवा इस गङ्गा-गमन के बहाने ही उन्हें किसी वन में छोड़ आओ।' विश्वास के कारण बेखटके साथ आई भाभी

को मैं जंगल में ऐसे लारहा हूँ जैसे पालतू हिरनी को कोई कसाईखाने ले जाए।

सीता – वत्स लक्ष्मण, पूरे दिनों के गर्भ-भार को उठाने से थककर मेरे पैर अब आगे नहीं बढ़ते। तो आगे जाकर देखो कि गङ्गा कितनी दूर है ?

लक्ष्मण – अब दूर कहाँ ? घबराइये मत। ये आ पहुँचे। देखिये—

ले लेकर मकरन्द-गन्ध अरविन्द-वनों का,
संग लिये संगीत मञ्जु कलहंस-गणों का।
शीत-तरङ्गोच्छलित स्वच्छ छींटे छितराती।
करने तुम्हें प्रसन्न पवन गङ्गा की आती ॥५॥

सीता—(वायु-स्पर्श का अभिनय करती है) माता के कर-स्पर्श के समान सुखद, शीतल, गङ्गा के झोकों के लगने से थकान की तरह पाप भी कट गये। तो भी गर्भकालिक चाह मुझे गंगास्नान के लिये प्रेरित कर रही है। इस खड़े किनारे से उतरने के लिये मुझ थकी माँदी को मार्ग दिखलाओ।

लक्ष्मण – [हाथ से दिखलाकर] मनुष्यों का आना जाना बिलकुल न होने से ये किनारे बड़े ही बेढब हैं। इसलिये पैरों के पजे खूब जमाकर—

धान्य-लता वह पकड़ हाथ में अपने बांए,
रखकर दांया हाथ और घुटनें पर दांए।
कदम कदम पर मेरे अपना कदम जमाएं।
धीरे धीरे आप धैर्य धर आयें ! आएं ॥६॥

सीता—(उसी प्रकार उतर कर) वत्स, मैं तो बिल्कुल हार गई। ठहरो, इस वृक्ष की छाया में बैठकर घड़ी भर सस्तालूं।

लक्ष्मण–आपकी जैसी इच्छा।

(सीता बैठकर विश्राम करती है)

लक्ष्मण—किस्मत के धनियों को कहीं भी किसी बात की कमी नहीं। तभी तो—

तरल तरङ्ग समीर सुशीतल चला रहे हैं।
कहीं गीत कलहंस मनोहर सुना रहे हैं।
छाया सुख दे रही गले मिलती सी आली
सूने वन भी आप दीखतीं परिजन वाली ॥७॥

सीता—ठीक कहते हो लक्ष्मण, मैं यहां भी दास-दासियों से घिरी हुई सी सुखी हूँ।

लक्ष्मण–(मन ही मन) भाभी आराम कर चुकीं और सुख से बैठी हैं। यही समय है कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूं।(प्रकट) (एकाएक सीता के पैरों में

गिरकर) आपके प्रवास दुःख में सदा का साझी कुलक्षणी लक्ष्मण प्रार्थना करता है कि आप अपने हृदय को दृढ़ कर लीजिये ।

सीता—(घबरा कर) मेरे प्राणनाथ कुशल से तो हैं?

लक्ष्मण—(वन की ओर निर्देश कर) इस दशा में कुशल कैसा?

सीता—माता कैकेयी ने फिर से वनवास दे दिया है क्या?

लक्ष्मण—वनवास तो दिया है पर माता ने नहीं।

सीता—तो, किसने?

लक्ष्मण—भाई जी ने।

सीता—क्यों?

लक्ष्मण—(आंसू रोककर)

उनकी आज्ञा—इसलिये कहता हूँ—तत्काल—
वाणी देती हृदय में एक गांठ सी डाल ॥ ८ ॥

सीता—तो क्या वनवास मुझे दिया है?

लक्ष्मण—केवल आपको ही नहीं अपने आपको भी।

सीता—यह कैसे?

लक्ष्मण—यज्ञाग्नि थी स्थापित, मित्र लोग
पाते, जहां थे सब सौख्य-भोग।
प्रासाद वे चारु विना-तुम्हारे
होंगे, उन्हें भी वन-तुल्य सारे ॥ ९ ॥

सीता—वत्स, साफ़ साफ़ कहो। आज मेरा वनवास उनका
वनवास कैसे है ?

लक्ष्मण—और क्या कहूँ मैं अभागा ?
वे चारित्र-धनी चुके तुम से नाता तोड़।
जाना मुझ को भी तुम्हें अब इस वन में छोड़॥ १० ॥

सीता—हा तात ! आर्य्य ! अवधेश्वर ! मेरे लिये तो आप
आज मरे हैं। (मूर्छित हो जाती है)

लक्ष्मण—(घबरा कर) अनभ्र वज्रपात तुल्य अपने
परित्याग के समाचार को सुनते ही, दीखता है
कि भाभी मर गईं। (देखकर) सौभाग्य से
सांस तो चल रहा है। इन्हें होश में कैसे लाऊँ ?
(दुःखी होता है) अहो आश्चर्य है :—

हुई गङ्गा की इन शीतल समीरों की मिहरबानी।
जगाई भाग्य से मेरी उठीं फिर जी महारानी॥ ११ ॥

सीता—वत्स लक्ष्मण ! चले गये क्या ?

लक्ष्मण—आज्ञा कीजिये। यह हूँ मैं अभागा।

सीता—किस दोष से निकाला है मुझे ?

लक्ष्मण—आप और दोष ?

सीता—ओह ! मैं कैसी अभागिन हूं ? तो बिना ही दोष
मुझे निकाला है ? मेरे लिये कोई सन्देश है क्या ?

लक्ष्मण – है।

सीता—कहो, कहो।

लक्ष्मण—अनुकूल थीं तुम सब तरह,

कुल से सदृश, गुणशालिनी,

सुख-दुःख संपद् विपद् में

सब काल थीं सहवासिनी।

यह जानकर भी छोड़ता हूं,

लोक-निन्दा-त्रास से,

प्यारी समझना मत कि तुमको,

प्रेम-रस के ह्रास से ॥१२॥

भाई जी का यही सन्देश है।

सीता—लोकनिन्दा का भय कैसा? क्या मुझ से कुछ भूल हुई है?

लक्ष्मण—आप से भूल कैसी?

अग्नि-परीक्षा-साक्षि हैं - लोकपाल, ऋषि, राम।

किन्तु—

सीता—(लज्जा से) हां, कहो—'किन्तु……..'

लक्ष्मण—किन्तु लोक के मुँह लगा सकता कौन लगाम ॥१३॥

सीता—'अग्नि परीक्षा' शब्द से मुझे याद आगया है। रावण-गृह-निवास का वृत्तान्त मुझे फिर सता रहा

है। मुझ-सीता के विषय में भी ऐसा सन्देह किया जाता है? संसार में स्त्री कोई न बने। यूं छोड़ी गई। हां छोड़ी गई। तो प्राणनाथ से छोड़ी हुई मैं भी क्या इन प्राणों को छोड़ दूं? उस निर्दय की उसही जैसी सन्तान की रक्षा करनी होगी, क्या इसीलिये कलङ्क-रूपी कण्टक से दूभर इस जीवन को धारण किये रहूं?

लक्ष्मण—कृपा है आपकी। (उठकर प्रणाम करता है)
भाईजी ने यह भी कहा है—

सीता—हैं, क्या कहा होगा?

लक्ष्मण—"गृहदेवते! बसी मन-मन्दिर सुन्दर मूर्त्ति तुम्हारी,
शयन-सहचरी सखी स्वप्नमें भी तुम ही हो प्यारी।
ले सकती आसन न तुम्हारा कोई कभी सपत्नी,
मूर्ति तुम्हारी ही यज्ञों में होगी मेरी पत्नी॥१४॥

सीता—यह सन्देश भेजकर आर्यपुत्र ने मेरा परित्याग-दुःख सर्वथा दूर कर दिया। व्यभिचारिणी स्त्री पति को उतनी वेदना नहीं पहुँचाती, जितनी अन्याऽऽसक्त पति पत्नी को।

लक्ष्मण—सन्देश के उत्तर में आपने कुछ कहना है?

सीता—किसे?

लक्ष्मण—भाईजी को।

सीता—अब भी सन्देश का उत्तर? तो भी चरण-प्रणाम पूर्वक मेरी पूजनीय सासों को कह देना कि जंगली जानवरों से घिरे घोर-वन में दिन काटती हुई अपनी पुत्रवधू के लिये अपने हृदय में कभी २ मंगल-कामना कर लिया करें।

लक्ष्मण—यह आज्ञा शिरोधार्य है। तो भाईजी को कुछ नहीं कहना?

सीता—ऐसे निठुर के लिये तुम सन्देश मांगते हो लक्ष्मण! यह तुम्हारी वाणी की उच्छृंखलता-मात्र है, सीता का सौभाग्य नहीं। तो भी मेरे ये शब्द उन्हें सुना देना—मुझ, पोच किस्मतवाली के लिये दुखी होकर वर्णाश्रमों के पालन में शिथिलता कर अपने आपको घुलायें नहीं, पीड़ित न करें। सत्पुरुषों के अनुसरण और अपने शरीर की रक्षा में प्रमाद न करें। वत्स लक्ष्मण! महाराज को मैं क्या उलाहना दूं?

लक्ष्मण—क्या आप को इतना भी अधिकार नहीं?

सीता—अच्छा, तो उन्हें यह भी कह देना—मुझ निरपराध को हृदय से ही नहीं किन्तु देश से भी इस प्रकार

सहसा निकाल देना आपके लिये उचित न था ।

लक्ष्मण—आपने अपना सन्देश कहलिया। मैं तो समझता हूँ–

उतरीं उनके हृदय से—यह होता है ज्ञात।

आप निकालीं देश से, घर की तो क्या बात ॥१५॥

सीता–इतना और कहना—वह तपोवननिवासिनी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती है कि, यदि मुझे किसी गुण से नहीं तो चिर-परिचित, अनाथ अथवा केवल सीतापन के नाते ही कभी कभी तो याद कर लिया करें।

लक्ष्मण—जले हुवे पर नमक सा; सुन कर यह सन्देश।

महाराज के हृदय को होगा दुःसह क्लेश ॥१६॥

सीता—इतने बड़े राज्य में भी दुःख में उनकी सहायता करनेवाला कौन है ? अब मेरे पीछे अकेले तुम्हें ही उनकी चिन्ता करनी होगी । देखना उनके स्वास्थ्य का बहुत बहुत ध्यान रखना ।

लक्ष्मण—यह बात आपकी महानुभावता के अनुरूप ही है।

सीता–वत्स लक्ष्मण ! रघुकुल की राजधानी अयोध्या माता को मेरी ओर से प्रणाम करना । स्वर्गीय बड़े महाराज की प्रतिमा के चरण छूना। मेरी पूजनीय सासों की आज्ञा का पालन करना । मीठा

बोलने वाली मेरी प्यारी देवरानियों और सखियों को ढारस बंधाना। मुझ अभागिनी को सदा याद रखना। (रोती है)

लक्ष्मण – (भरे हृदय और रुंधे गले से)

इन हत्यारे हाथों वन में भाभी को छुड़वाने
इन कुत्सित कानों में उनका क्रन्दन दीन सुनाने।
मुझे जगाकर— सुख से सोते को लङ्का के रण में
जीवन-दाता पवन-पुत्र भी रिपु दिखते इस क्षण में ॥१७॥

(चारों ओर देखकर)

हरी घास भी छोड़ हरिणगण मातम कहीं मनाते,
शोक-विकल कुल कलहंसों के कहीं विलाप सुनाते।
देवी की दुख दशा देखकर मोर न नृत्य रचाते,
पत्थर रहे पसीज, नरों के हृदय दया न दिखाते ॥१८॥

सीता—वत्स लक्ष्मण ? दिन ढल चुका है। यहां दूर २ तक कहीं आदमी का पता नहीं। पक्षियों ने वृक्षों पर बसेरा लिया। जंगली जानवर घूमने लगे। अब यहां अधिक रुकना तुम्हें उचित नहीं।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़ कर) (यह लक्ष्मण की सब से अन्तिम प्रणामाञ्जलि है, इसे सावधान हो स्वीकार कीजिये)

सीता—मैं सदा सावधान हूँ।

लक्ष्मण—आप से प्रार्थना है—

स्वामी, सखी, स्वजन, सुख घरके कभी स्मरण कर मनमें
धोलें आप न हाथ सुपावन इस जीवन से वन में।
सूर्यवंश की विमल-कला की हुई आपने धारण,
है उत्तम कर्त्तव्य आपका अब तो इसका पालन ॥१६॥

सीता—तुम्हारी बात को मैं कभी नहीं टालूंगी।

लक्ष्मण—यह निवेदन और है—

सीता—वह क्या ?

लक्ष्मण—भाई के आदेश से ला वन में, निर्दोष—
छोड़ रहा हूँ आपको, करें न मुझ पर रोष ॥२०॥

सीता—बड़े भाई की आज्ञा पालन कर रहे हो--इस सन्तोष के स्थान में रोष की आशङ्का कैसी ?

लक्ष्मण--(प्रदक्षिणा तथा प्रणाम कर चलता है)

सीता—(रोती है)

लक्ष्मण—(दिशाओं को देख कर) हे सब दिक्पालो ! सुनो—
पूज्य महारथ नृप दशरथ की पुत्रवधू सुकुमारी

सीता—अहा ! कैसे सुन्दर शब्द सुनाई पड़ रहे हैं ?

लक्ष्मण—राम नाम भगवान् विष्णु की पत्नी सीता प्यारी।

सीता—ऐसे भाग्य मेरे कहां ?

लक्ष्मण—पतिगृह से निर्वासित............

सीता--(कान मूंद लेती है)

लक्ष्मण— निर्जन जंगल में अलबेली

आई, रक्षा करें आप सब, ये हैं यहां अकेली ॥२१॥

सीता—(गर्भस्थित संतान की ओर निर्देश करती है—रक्षा के लिये)

लक्ष्मण—इनके लिये भगवती भागीरथी से भी प्रार्थना करूं –

थक जायें जब ये, तुम गङ्गे ! सुरभि-सना मस्ताना,
लहरों से सुख शीतल, इन पर कोमल अनिल चलाना।
उतरेंगी तुम में ही, होगा जब जब इन्हें नहाना,
धीरे धीरे तब तुम अपना निर्मल नीर बहाना ॥ २२ ॥
रहते हैं इन सघन वनों में मुनिवर जो कि यहां पर
सब से मेरी एक यही है विनती शीश नवा कर।
पति की त्यागी, दीन, अभागी, स्त्री, देवी कुलनारी—
कुछ समझो—ये सभी तरह हैं करुणा-पात्र तुम्हारी ॥२३॥

ये हाथ जोड़े वन-देवताओ !
मैं मांगता हूं करुणा दिखाओ।
सोती, दुखी और असावधाना—
इन्हें, कभी आप न भूल जाना ॥ २४ ॥
हिंस्र पशुओ ! भाग बस जाओ कहीं,
अब नहीं तुम भूलकर आना इधर।

हा सखी वनवासिनी मृगलोचनी की,
इन्हें मृगियो ! न जाना छोड़ कर ॥ २५ ॥
लोकपालो ! स्वामियो, माँ जाह्नवी !,
सखि सरित् ! गिरि ! भाइयो सुनलो कहा ।
ध्यान रखना राजरानी का सदा,
मांगता लक्ष्मण यही बस जारहा ॥ २६ ॥

(प्रणाम कर जाता है)

सीता—मुझे अकेली छोड़, लक्ष्मण सचमुच ही चला गया क्या ? (देखकर) हाय ! धिक्कार है मुझे । सूर्य छिप गया । लक्ष्मणकी आवाज़ भी कहीं सुनाई नहीं पड़ती । हरिण अपने वसेरों में आलिये । पक्षी उड़ गये । जानवर घूम रहे हैं । अन्धेरे ने आंखों में धूल मिला दी । इस भयङ्कर महावन में मनुष्य का कहीं चिह्न भी नहीं । क्या करूं मैं अभागिनी ? इन बीहड़ वनों में अकेली कहां भटकती फिरूं ? यह बिछोह मेरे किन पापों का फल है ? लक्ष्मण से नियुक्त वनदेवताएं क्या हुईं ? सूर्यवंश में कुलक्रमागत वशिष्ठ वाल्मीकि आदि प्रभावशाली महर्षि क्या हुवे ? सब ने मुझे छोड़......... (बेहोश हो जाती है))

(वाल्मीकि का प्रवेश)

वाल्मीकि—(घबराहट के साथ)

कर कर सन्ध्यास्नान, सांझ इस गङ्गा-तट से आये
मुनिपुत्रों ने समाचार थे दारुण मुझे सुनाये।
थी रो रही यहां ही कोई दीन गर्भिणी वाला
उसे ढूंढ़ने आया हूं मैं यहां व्यथित-मनवाला ॥२७॥

अच्छा, तो ढूंढूं। (ढूंढ़ता है)

सीता—(होश में आकर) यह कौन मुझे घूर रहा है? (सोचकर) नहीं, कोई नहीं। आज्ञापक लक्ष्मण के वचन से मेरा अनुसरण करती हुई भगवती भागीरथी अपनी शीतल तरङ्गों से मुझे अनुगृहीत कर रही हैं।

वाल्मीकि—आंखों में अंधेरा मिल जाने से कुछ नहीं सूझता। आवाज़ दूं। यह मैं हूं—

सीता—(प्रसन्नता से) क्या लौट आये तुम वत्स लक्ष्मण?

वाल्मीकि—लक्ष्मण नहीं, मैं हूं।

सीता—(घूंघट निकाल कर) ओ! अनर्थ होगया! यह अजनबी कौन होगा? अब इस बला को कैसे टालूं? (सोचकर) यूं सही—मैं असहाय अबला हूं।

वाल्मीकि—यह खड़ा होगया मैं। बेटी तू मुझे पराया न समझ। गंगा तट पर सांझ को स्नान

सन्ध्यादि करके लौटे हुए मुनि-कुमारों से तुम्हारा हाल सुनकर मैं तपस्वी, तुझे ढूंढ़ने आया हूं। मैं पूछता हूं—

थी धर्म से पाई विजय जिसने समर विकराल में।
दुखदे तुम्हें आराम के भी कौन शासन-काल में ॥ २८ ॥

सीता—उसी पूर्ण चन्द्र से तो मुझ पर यह वज्रपात हुआ है।

वाल्मीकि—तो राम से ही तुम्हें यह दुःख मिला है?

सीता—और क्या?

वाल्मीकि—वर्ण और आश्रमों की व्यवस्था रखने वाले राम ने ही तुम्हें निकाला है तो मैं भी तुम से बाज़ आया। भला हो तुम्हारा। मैं जाता हूं। (जाने लगता है)

सीता—प्रार्थना है—

वाल्मीकि—कहो—

सीता—रघुपति से निकाली गई हूं इसलिये यदि आप मुझ पर दया नहीं दिखाते तो, मेरे गर्भ में स्थित रघु सगर दिलीप दशरथ जैसे महानुभावों की वंशधर सन्तति पर तो कम से कम अवश्य ही करुणा कीजिये।

वाल्मीकि -[लौटकर] यह तो सूर्यवंश से ही अपना सम्बन्ध बतला रही है। तो पूछूं—बेटी ! तुम महाराज दशरथ की पुत्रवधू हो ?

सीता—यही समझिये।

वाल्मीकि—और विदेहराज जनक की पुत्री ?

सीता—जी।

वाल्मीकि—और सीता ?

सीता—सीता नहीं, भगवन् ! एक अभागिनी।

वाल्मीकि—हाय, कैसा सर्वनाश है ? महल से उतार तुम्हें नीचे क्यों बिठा दिया ?

सीता—(शरमा जाती है)

वाल्मीकि - शरमाती हो। अच्छा, दिव्य चक्षु से देखता हूं। (ध्यान करके) बेटी ! लोकनिन्दा से डरे हुये राम ने तुम्हें घर से ही निकाला है हृदय से नहीं। तुम निरपराध हो। मैं तुम्हारा परित्याग नही कर सकता। चलो, आश्रम को चलें।

सीता--आपका परिचय ?

वाल्मीकि—सुनो—सुहृत् पुराना मिथिलेश का मैं
सखा अयोध्या-पति का अनन्य।

वाल्मीकि हूं पुत्रि ! करो न शङ्का
मानो मुझे भी उनसे अनन्य ॥२६॥

सीता—भगवन् प्रणाम करती हूं ।

वाल्मीकि--वीरप्रसवा होओ और पुनः अपने पति की कृपाभाजन बनो ।

सीता—संसार आपको वाल्मीकि कहता है पर मुझे तो आप पिता-श्वशुर सब कुछ हैं । मुझे अपने आश्रम में ले चलिये । भगवती भागीरथी ! यदि मेरा प्रसव सुख-पूर्वक हुआ तो प्रतिदिन अत्यन्त सुन्दर कुन्द कुसुमों की माला गूथ तुम्हें भेंट किया करूंगी ।

वाल्मीकि—रास्ता बड़ा ऊबड़-खावड़ है, तुम्हारे लिए विशेषकर, जैसे २ मैं मार्ग दिखाऊं वैसे २ ही आओ—

कुश-कंटक हैं—हलके हलके पैर यहां धर चलना,
नीची है यह डाल—झुको कुछ, बाँए गढ़ा, सम्हलना ।
दांए ठूंठ, सहारा ले लो, अब है पृथिवी समतल
धोलो इसमें पैर, कमल-सर यह अतिसुन्दर निर्मल ॥३०॥

सीता—(इसी तरह चलती है)

वाल्मीकि—(दिखा कर)

पुण्य-क्रिया रघुकुल वालों की पुंसवनादिक सारी,

हम ही सदा किया करते हैं बेटी ! हो न दुखारी।
सास आदि की सेवा का सुख वृद्धाओं में पाना,
होंगी सखियां और बहिन ये मुनि-कन्याएं नाना ॥३१॥

(सब जाते हैं)

प्रथम अंक समाप्त



द्वितीय अङ्क

(दो मुनि-कन्याओं का प्रवेश)

पहली—सखी वेदवती ! बधाइयां। तेरी सहेली सीता के, रामचन्द्रजी जैसे सुन्दर वर्ण वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं।

वेदवती—अहा ! बड़ी खुशी की बात है ! यह तो बताओ कि उनके नाम क्या २ रक्खे गये हैं ?

पहली- कुलपति जी बड़े को कुश और छोटे को लव कहा करते हैं।

वेदवती—वे चलने फिरने भी लगे हैं ?

पहली—तू चलने फिरने की ही पूछ रही है—

(वे मृग-राज-किशोर से कर हिरणों से होड़।
तपसियों के भागते फिरते हैं चित-चोर ॥२॥)

वेदवती—यह सुन कर मैं तो समझती हूँ कि यही सीता के पुण्यों का फल है। इनका कैसा गहरा प्रेम था ?

पहली—यह सीता का सौभाग्य अभी और फले फूले। हां, नैमिषारण्य का क्या समाचार है ?

वेदवती—महाराज के यज्ञ की सब सामग्री वहां प्रस्तुत हो चुकी है। अब ऋषि, मुनियों को पत्नी आदि सहित पधारने के लिए निमन्त्रण भेजे जा रहे हैं।

पहली - हमारे कुलपति जी को भी निमन्त्रित किया गया है?

वेदवती - सुना तो है कि इस वाल्मीकि-तपोवन में भी राम-दूत आया है। अच्छा, तो सीता अब कहां मिलेगी?

पहली—समय कैसे कटे—इस चिन्ता में मग्न यहीं साल वृक्ष की छाया में बैठी है।

(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(पृथिवी पर बैठी चिन्तातुर सीता का प्रवेश)

सीता—(गहरी सांस लेकर) ओह! स्वभाव से ही निठुर पुरुष-हृदय इतना धोखा दे सकता है! स्तूपों तथा स्मृति-स्तम्भों पर अङ्कित करने योग्य प्रेम वाले दम्पतियों के प्रसङ्ग में—स्वर्ग में उमा महेश्वर और पृथिवी-तल पर सीता राम का प्रेम आदर्श है - इस लोकोक्ति को जन्म देकर भी आज मुझ निरपराधिनी की यह दुर्दशा कर दी है। हाय! किस मुंह से उनकी निन्दा करूं? मेरे प्राणनाथ ने पहिले मेरा इतना आदर बढ़ा फिर केवल एक झूठे अपवाद के कारण आज मुझे कोसों दूर पटक......बिना

कारण......आज मेरा जीवन मेरे लिये ही पूर्णदुःख-मय...अहा ! उनके साथ भी चन्द्रोदय देखे थे, कोकिलों के कल आलाप सुने थे. मलयमारुतों के सुखमय स्पर्श अनुभव किये थे। उन्हीं सबको मैं आज अकेली देख, सुन और अनुभव कर रही हूं। क्या इन प्राणों को छोड़ दूं ? मुझ जैसी स्त्रियों को यह शोभा नहीं देता। एक दिन मैं अपने प्रियतम की प्यारी थी तो सब मिथिला-निवासियों की दृष्टि मुझ पर उठा करती थी—आज मेरी यह दुर्दशा है। परित्याग दुःख उतना नहीं, जितनी यह लज्जा मुझे मारे डाल रही है। आज मेरी गोद में दो लाल खेल रहे हैं। दोनों अच्छी तरह पल कर बड़े हुए हैं। भगवान् वाल्मीकि सब प्रकार मेरा ध्यान रखते हैं। तो तपोवन-निवास के विरुद्ध इस प्रकार आहें भर २ कर दिन काटना मुझे उचित नहीं। मैंने प्रियसखी वेदवती को अभी तक अपनी पुत्रोत्पत्ति का समाचार नहीं दिया और न उसे इस मंगलोत्सव पर निमन्त्रित ही किया—यह और भी कारण है कि मैं अभी मरना नहीं चाहती।)

(वेदवती का प्रवेश)

वेदवती— तपोधनों को प्रणाम और अतिथियों का उचित शिष्टाचार तो मैं कर चुकी, अब इधर चलकर

साल की छाया में बैठी प्रिय सखी सीता का अभिनन्दन करूँ (घूम कर और देख कर) गरमी के महीनों में कुमलाई हुई लता की तरह, पीले दुबले अंगोवाली, महाराज जनक की यह दुलारी मेरे हृदय को मसोसती हुई साल की जड़ में बैठी है। चलूं इसके पास। (पास पहुंच कर) ये लम्बी अलकों से आच्छादित लोचन, यह कातर-दृष्टि, यह चिन्ता निमग्न आकृति, यह नीचे को लटका हुआ मुँह—। इसे बुलाऊं (बुलाती है) सखी वैदेही !

सीता—(चिहुकती हुई देखकर) मैं बड़ी प्रसन्न हूं। प्रिय सखी ! तुम आ मिलीं। स्वागत है तुम्हारा।

वेदवती—कुश लव तो सकुशल हैं ?

सीता—वनवासी जितने हो सकते हैं।

वेदवती—अपनी कहो।

सीता— वेणी को दिखला कर) मेरा क्या होना है ?

वेदवती—(मन ही मन) यह बेचारी बहुत ही व्याकुल हो रही है। अच्छा, राम के किये अपमान की याद दिलाकर इसके शोक को कम करूँ। (प्रकाश) अय नादान ! वैसे विश्वासघाती और निर्दय के लिये क्यों दिनोंदिन कृष्णपक्ष की चन्द्रकला

की तरह घुली जारही हो ?

सीता – वे निर्दय क्यों ?

वेदवती—तुम्हें छोड़ जो दिया।

सीता—क्या छोड़ दिया है मुझे ?

वेदवती—(हँसकर और उसकी वेणी पर हाथ फेरकर) लोग ऐसा ही कहते हैं। हां, सचमुच तुम्हें छोड़ दिया।

सीता—किन्तु केवल शरीर से, हृदय से नहीं।

वेदवती—तुम्हें पराये हृदय की क्या ख़बर ?

सीता—उनका हृदय, और सीता के लिये पराया ? यह कैसे ?

वेदवती—ओह ! कैसा अटूट अनुराग है ?

सीता—जिस आर्यपुत्र ने मुझ अधन्या के लिये जगत्प्रसिद्ध सेतुवन्धादि उद्योग किये वे मुझ से विरक्त कैसे हो सकते हैं ?

वेदवती—अपने मुंह मियां मिट्ठू ! अपकारी रावण पर क्रोध तो हो पर सीता पर प्रेम न हो--क्षत्रिय-पुत्र के लिये यह भी संभव है।

सीता – यह और नहीं देखती हो ?

वेदवती—क्या और ?

सीता—यही

वेदवती—यही क्या ?

सीता—(शरमा कर) यही कि आज इतने दिन हो चुकने पर भी, सौतिन के निश्वास-पवन से अदूषित उनके हृदय में मैं ही पूजा पारही हूं।

वेदवती—सखि ! क्यों उतावली हो रही हो। राम अश्व-मेध यज्ञ में दीक्षित होने ही को हैं।

सीता—तो क्या ?

वेदवती—यही कि तब यज्ञ में किसी सहधर्मचारिणी का पाणिग्रहण करना ही पड़ेगा।

सीता—आर्यपुत्र के हृदय पर ही मेरा प्रभुत्व है, हाथ पर नहीं।

वेदवती—(मन ही मन) ओह ! कैसा अटूट प्रेम है ? (प्रकाश) सखी ! क्या पुत्रों का मुख देखकर भी तुम्हारा प्रवास-शोक अभी दूर नहीं हुआ ?

सीता—(ज्यों ज्यों दवा करती हूं मर्ज़ बढ़ ही रहा है। शोक को दूर करने का उपाय ही उलटा उसे बढ़ाने वाला है।)

वेदवती—कैसे ?

सीता—जब २ मेरे बच्चे कुछ २ निकली दंतुलियों से सुन्दर, अपने मुखड़ों से मुझे निहारते हुये हँस

देते हैं, जब २ वैसी ही मीठी वाणी से उसी तरह बुलाते हैं—मैं उनकी मोहकता में डूब सी जाती हूं। अब तो वे समय के साथ २ बचपन को लांघकर और भी बड़े होगये इसलिये मुझे और भी अधिक दुख पहुंचता है।

वेदवती—ओह ! कैसी बेहद निठुरता है, छोटे छोटे बच्चों वाली सीता की भी आज यह दुर्दशा है।

सीता—सखी वेदवती ! क्या कभी ईश्वर करेगा कि······

वेदवती—लजाती क्यों हो? कहो न कि आर्यपुत्र को फिर देख सकूंगी।

सीता—(मनहीं मन) लज्जा की क्या बात है? मैं कहती हूं (प्रकाश) क्या कुश लव के पिता के दर्शन से फिर भी कभी यह जीवन सफल होगा?

वेदवती—महाराज के दर्शन तो अभी होते हैं।

सीता—कैसे?

(नेपथ्य में ऋषि)

हे आश्रमनिवासी लोगो ! आप सब सुनें—यहां से कुछ ही दूर पर महायज्ञ अश्वमेध शुरू हो रहा है। यज्ञ सामग्री सब उपस्थित है। नाना देश निवासी वशिष्ठ आत्रेय आदि सब ऋषि

आचुके हैं। केवल भगवान् वाल्मीकि के आने की बाट जोहते हुए महाराज अभी तक यज्ञ में दीक्षित नहीं हुये। वाल्मीकि-तपोवन में निमन्त्रण देने के लिये महाराज दूत भी भेज चुके हैं तो अब देर न करनी चाहिये—

विमल विमल जल तीर्थों के ले विधिवत् सब समिधायें।
मरकत-हरित चारु दर्भाङ्कुर ले अम्लान सुहाये।
पूजा के उपहार सजाकर मुनिगण—मुनिकन्यायें
आगे चलें शगुन शुभ करतीं आश्रम में मन भाये॥ २॥

सीता—चलूं जल्दी चलूं। प्रस्थान-घोषणा सुनते ही आर्य काश्यप तो सब यज्ञ सामग्री लेकर आगे २ होलिये। मैं भी कुश लव को तिलक करदूं।

(जाती है)

द्वितीय अंक समाप्त



तृतीय अङ्क

(मार्ग चलने से थका हुआ, बोझ उठाये, तपस्वी प्रवेश करता है)

तापस—(थकान का अभिनय करके) गरमी की व्याकुलता के कारण वेअन्त प्रतीत होने वाले ग्रीष्म-समय ने मुझे बहुत ही थका दिया है। थकान से पिंडलियां ऐसी जकड़ी गई हैं कि अब पैर उठाये नहीं उठते। पांवों के तलुवों में फफोले फूट २ कर फोड़े बन गये हैं। और तो और इतनी सुकुमार देवी सीता, ऐसे कोमल कुमार कुश लव भी तपस्वियों की टोली के साथ सूर्य छिपने से पहिले ही नैमिश पहुंच गये। पर मैं अभी यहीं पिछड़ रहा हूं। वन की ओर चलना शुरू करते ही—यहां कौन मुझे नैमिश का मार्ग दिखाएगा? (देखकर) हो न हो ये लक्ष्मण सहित राम जारहे हैं जो आजकल नैमिश में आए हुए हैं। तो चलूं मैं भी इनके

पीछे पीछे ही होलूं।

(जाता है)

प्रवेशक समाप्त

(आगे २ लक्ष्मण तथा पीछे २ शोक संतप्त राम का प्रवेश)

लक्ष्मण—भाई जी ! इधर आइये इधर। (घूम कर)

मैं ही पापी लक्ष्मण पहले निरपराध बेचारी,
भाभी को ले गया छोड़ने वन में भीषण भारी।
बचे हुए बस भाई को भी अब लेकर अन्यायी,
मैं अधन्य फिर चला कहीं हूँ स्वजनोंको दुखदायी॥१॥

हाय ! यह ठीक ही कहा जाता है—

सुप्रीति को दर्प करे विभङ्ग, सुशीलता को व्यसन-प्रसङ्ग।
ऐश्वर्यका नाश करे प्रमाद,विध्वंस-कारीधृति का विषाद ॥२॥

तभी तो—मन्दर महीधर के समान धीर गम्भीर भाई जी की यह अवस्था है कि भगवान् वाल्मीकि का पधारना सुन कर उनसे भेंट करने के लिए गोमती के तट वाले आश्रम की ओर जाते जाते बीच में ही शोकावेश से विक्षिप्त हो फिर नैमिश की तरफ ही चल दिये हैं। तो क्या इन्हें बतलादूं ? या, जाने दो, इससे क्या मतलब ? वह द्वारपाल तेज़ी से चला जा रहा है। उसी का मार्ग इन्हें

दिखा देता हूँ। ये अनजाने में ही वाल्मीकि जी के आश्रम जा पहुँचेंगे। भाई जी! इधर को, इधर को।

राम—(गहरी सांस लेकर)

विफल करदिया उस जलनिधि में सेतु विशाल बनाना
शुद्धि-परीक्षा में देवी की कुछ न अग्नि को माना।
सूर्यवंश की पावन संतति पर भी दृष्टि न डाली
प्रिया छोड ये करतूतें कीं मैंने काली काली ॥३॥

(घूम कर) ओह! बेचारी को ऐसा प्रवासित किया है कि जहां कोई भी सहारा नहीं —

कातर दृष्टि डालती होंगी किधर किधर तुम प्यारी!
कहां बंधाती ढारस होंगी दिल को तुम सुकुमारी!!
कदम कदम पर मिलते होंगे जिस वन में करि चीते
कैसे वहां जी रही होंगी तुम निराश प्रिय सीते ॥४॥

लक्ष्मण—(मन ही मन) आर्या के देश निकाले और उनकी गर्भस्थ संतान के वध को याद कर करके वे बहुत व्याकुल हो जाते हैं तो विषय बदल कर भाभी जी का प्रसङ्ग टाल दूं। (प्रकाश) इधर तो देखिये भाई जी—

मरकत-हरित मनोहर शीतल निर्मल नीरों वाली

मदकल-कलहंसी-गीतों से मंजुल तीरों वाली।
विकसित कमलों के परिमल से दिग् दिगन्त महकाती
नहीं गोमती देव! दीखती यह आगे इठलाती ॥५॥

राम—(वायु-स्पर्श का अभिनय करके)

चन्द्र किरण, चन्दन, मलयानिल, शीतल मुक्ता माला
प्रिया-विरह में मुझे होगये दावानल की ज्वाला।
हुई अचानक सुखद गोमती-पवन आज यह प्यारी
क्योंकि रह रही कहीं उधर ही वह त्यक्ता बेचारी ॥६॥

लक्ष्मण—नदी की यह ढाल बहुत ही बेढब है इसलिए साव-धानी से उतरिये (दोनों उतरते हैं) (देख कर) ये रेतीले मैदान पास २ पड़े बहुत से पद चिन्हों से अङ्कित हैं, ये तट लतायें केवल नाल शेष रह जाने के कारण बता रही हैं कि किसी ने इनके फूल चुगे हैं, पत्ते तोड लेनेसे इन वृक्षों की छाया छीदी होगई है मालूम होता है कि यहां कहीं पास ही मनुष्यों का निवास अवश्य है। देखिए—

देवार्चन के लिये हाल ही जो उपहार संवारे
कैसे सुन्दर बालू वाले उनसे हुवे किनारे।
तरल तरङ्गों में यह बहती कुन्द कुसुम की माला
मानो खेल रही है कोई चपल भुजंगम-बाला ॥७॥

राम- वह मनुष्य- निवास न केवल पास ही, किन्तु बहाव से उलट बिलकुल किनारे पर भी है !

लक्ष्मण—कैसा आश्चर्य है ? यह कुन्द-माला मानो आपकी चरण सेवा करने के लिये ही नदी ने अपनी तरङ्ग-परम्परा-द्वारा आपके चरण कमलों में भेंट की। इसकी सुन्दर-रचना ध्यान से देखने योग्य है। आप भी देखिये। (उठा कर लाता है)

राम - (देख कर और पुलकित होकर) वत्स ! माला गूंथने का यह चमत्कार हमारा पहले से देखा हुआ है।

लक्ष्मण -कहां देखा है ?

राम—ऐसा चमत्कार भला और कहां ?

लक्ष्मण तो क्या भाभी में ?

राम -हां—

लक्ष्मण -कौन जाने यह कुटिल दैव कैसे २ कौतुक करता रहता है ? चलिये, बहाव के ऊपर की ओर इस गोमती के किनारे २ ही चलें और पता लगायें कि यह कुन्दमाला कहां से आई ?

राम -लोगों के हाथ की कारीगरी में समानता हो जाना बहुत संभव है। हमारा ऐसा सौभाग्य कहां ? परित्यक्ता प्रिया का इतनी दूर आपहुँचना कैसे संभव

है ? तो भी रास्ता दिखाओ जिससे पानी के किनारे को न छोड़ते हुवे उस निवास-स्थान पर जा पहुँचे ।

लक्ष्मण—कांटे, कंकर, सीपों के टुकड़ों से यह नदीतट चलने के सर्वथा अयोग्य है अतः मेरे बताये मार्ग पर ही आप धीरे धीरे आइये ।

राम—ऐसा ही सही । यह कुन्दमाला मुझे बड़ी प्यारी मालूम हो रही है, तोभी किसी देवता को भेंट की गई होगी इस शंका से मैं इसे धारण नहीं कर सकता (छोड़ देता है)

लक्ष्मण—नेत्र-लता यह--इसे लाँघिये, बचिये सीपी है यह,
सावधान हो झुकिये—आगे तरु है बहुत झुका वह ।
खींच धनुष से दूर छोड़िये शाख वक्र है कोई,
धीरे चलें न चौंक पड़े जो कहीं शेरनी सोई ॥ ८ ॥

राम—(उसी प्रकार चलकर) वत्स ! क्या यहीं भगवान् वाल्मीकि का आश्रम है ?

लक्ष्मण—आप क्या देख रहें हैं ?

राम—जाता जिसे ध्यान विना न देखा,
है छारही कोमल धूम-लेखा ।
समीर के साथ सुमन्द आता,
है साम का गान अहो सुहाता ॥ ९ ॥

लक्ष्मण—बिलकुल ठीक समझा आपने। मैं आगे बढ़कर जरा और भी ध्यान से देखूं ?

❀ (जांघो के जकड़े जाने का अभिनय करता है)

(चलता हुवा आगे खड़े वृक्ष से रुक कर) यह कदम उठते ही मेरा दिल क्यों धड़कता है ? जांघें जकड़ी सी जा रही हैं, उठाये हुवे भी पैर आगे बढ़ना नहीं चाहते। (सोच कर) अवश्य ही किसी पूजनीय का निवास है। ये पद—चिन्ह कैसे हैं ? (भूमि की ओर देखता है)

राम—वत्स ! तुम इस स्थान को ऐसे ध्यान से क्यों देख रहे हो ?

लक्ष्मण—इस रेती में कुछ पद-चिन्ह अङ्कित हैं। अत्यन्त सुन्दरता के कारण जिन में चरण तलों की सुकुमारता झलक रही है, ललित और हलकी छाप होने के कारण जो अवश्य ही किसी स्त्री के प्रतीत होते हैं। देखिये आप भी—

❀मुद्रित पुस्तक में (तरुस्तम्भ मभिनीय) यह पाठ मिलता है तदनुसार हमने अर्थ कर दिया है किन्तु पाठ (उरुस्तम्भ मभिनीय) होना चाहिये। इसका अर्थ भी हमने साथ ही लिख दिया है। पाठक औचित्य को स्वयं विचार लें। अनुवादक।

थकान से या मृदु हावभाव से,
धीरे धरे जो अथवा स्वभाव से।
बता रहे ये पद-चिन्ह, कामिनी
कोई यहां है कल हंस गामिनी ॥१०॥

राम—(देखकर प्रसन्नता से) वत्स! 'किसी स्त्री के' क्यों कहते हो? कहो कि 'सीता देवी के पद-चिन्ह हैं'। देखो—

उतना ही आकार बनावट सुललित मृदुल वही है,
रेखा-कृत सौभाग्य०—तिलक मय पंकज अतुल वही है।
इन्हें देखकर मुझे मिल रहा कुछ ऐसा आश्वासन,
यह पद-पक्ति प्रिया की ही है—कहता मेरा यह मन॥११॥

लक्ष्मण—(प्रसन्नता से) तो इस पद-पंक्ति को पकड़ कर ही चलते हुवे भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे। ये चिन्ह क्योंकि बिलकुल ताजे हैं-- अवश्य ही भाभी यहां कहीं पास ही होंगी।

(सीता का प्रवेश)

सीता—सोम लता निचोड़ चुकी, सन्ध्या करली, अग्निहोत्र हो गया, नहा चुकी, अपने हाथों गूँथी हुई कुन्द-माला भगवती भागीरथी को भेंट कर चुकी।
अब ऊँचे, घने, शीतल इस लता कुंज में जाकर अतिथि--

जनों की पूजा के योग्य फूल बीन लूं।

(जाकर फूल बीनती है)

लक्ष्मण—यह पद-पंक्ति मार्ग के साथ २ चलती हुई रेती को छोड़कर इस ऊंचे स्थल पर आ चढ़ी और अदृश्य हो गई। तो इसी, सामने दीख रही, लता-कुंज की छाया में बैठकर ठंडे हो भगवान् वाल्मीकि के पास पहुंचेंगे।

राम—जो इच्छा।

(पहुंच कर दोनों बैठ जाते हैं)

राम--(आह भरकर डबडबाई आंखों से) वत्स ! वत्स !

सीता—(कान देकर) यह कौन है जो पानी भरे तरुण जलधर के घोष के समान गंभीर, अपने मधुर कण्ठस्वर से अत्यन्त दुःखभाजन मेरे शरीर को भी पुलकित कर रहा है ? तो देखूं-यह कौन है ? अथवा, असली बात को जाने बिना अनुचित स्थान में दृष्टिपात करना मुझे उचित नहीं। या, यहां जानना ही क्या ? पर पुरुष के शब्द को सुनकर मेरा शरीर रोमाञ्चित नहीं हो सकता। निश्चय ही वह निठुर यहां आपहुंचा। तो निहार लूं? अथवा, ऐसे हृदयहीन के लिये मैं इतनी आतुर

हो रही हूँ कि मेरा अपना ही मन मुझे सचमुच लज्जित कर रहा है। मैं न देखूंगी। (मुंह फेर कर) हैं, मेरा हृदय मेरे हाथ से क्यों निकला जा रहा है? क्यों मेरी दृष्टि ज़बरदस्ती बार २ उधर ही खिंच रही है? या. मैं करूं भी तो क्या? वह मुझ से विमुख है पर मेरा मन उससे विद्रोह कर ही नहीं सकता। (देखती है) ओहो! देख लिया-इससे प्रसन्नता है, इसीने तो मुझे सदा के लिये निकाल दिया-इससे क्रोध है, यह कितना दुबला हो गया है? इससे व्याकुलता है, निठुर है-इससे अभिमान है, चिरपरिचित है—इससे अनुराग, कितना सुन्दर है? इससे चाव, स्वामी है—इससे आदर, कुश लव का पिता है-इससे गृहिणी-भाव, मुझे अपराधिनी ठहराया है इससे लज्जा। आर्यपुत्र के इस एक दर्शन से मेरे हृदय में न मालूम कैसे २ विचार उठ रहे हैं!

लक्ष्मण—मुझे एक बार सम्बोधित कर, अचानक ही आंखों में आंसू भर आपने मुँह नीचे को क्यों कर लिया?

राम—यह वन बिलकुल सुनसान है। जिसके तट वृक्षों की

छाया में कोमल बालू बिछा रही है। ऐसी निर्मल जल वाली इस नदी को देखकर मुझे दण्डकारण्य के वनवास की याद आगई और मेरा हृदय अधीर हो उठा।

सीता—आर्यपुत्र ! तुम्हें उस वनवास की तो याद है पर इस बनवासिनी की नहीं ?

लक्ष्मण—जिसमें दुख ही दुख है ऐसे बनवास में कौनसी बात याद करने की है ?

राम—वत्स लक्ष्मण ! ऐसा क्यों कहते हो कि जिस में दुख ही दुख है उस बनवास में कौनसी बात याद करने की है। देखो--

किसलय-कोमल पाणि प्रिया का पकड़ प्रेमसे अतिशय,
करता सन्ध्या-समय रसीली प्रणय-कथायें सुखमय।
टहल रहा था—पैर दब गया—फूट पड़ा था पानी,
नदी किनारे उस विहार की आती याद कहानी॥१२॥

सीता—अय निठुर ! इस प्रसङ्ग को छोड़कर मुझ अशरण दुःखित जन को और दुःखित क्यों करते हो ?

लक्ष्मण--भाईजी ! अब छोड़िये इस शोक को।

राम—कैसे छोड़ूं इस शोक को मैं अभागा ? देख देख—

वन जाना, लङ्कापुरी, फिर प्रवास यह अन्य।

देवी ने दुख ही सहे पाकर मुझे अधन्य ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! कहां घर से निकालना और कहां यह शोक ?

राम—हाय ! महाराज जनक की राजदुलारी !

सीता—हाय ! मेरे पुण्यकर्मों की कमी के कारण मुझ से छिन गये !

राम—हाय ! बनवास की संगिन !

सीता—हाय ! आज यह भी नसीब नहीं ।

राम—ओह ! तुम कहां हो ?

सीता—अभागिनी जहां होती हैं ।

राम—मुझ से बोलो ।

सीता—जिसे तुमने इस तरह ठुकरा दिया, उससे फिर बोलना क्या ?

(राम शोकातुर हो जाता है)

लक्ष्मण—भाईजी ! विनती करता हूँ कि आप अब शोक न करें ।

राम—शोक करने योग्य प्यारी के लिये क्यों न करूं शोक ?

सीता- सीता आज शोक करने योग्य है—यह मत कहो आर्यपुत्र ! जिसके लिये प्रेमी के हृदय में तड़प है क्या वह भी शोक करने योग्य है ?

राम—वत्स लक्ष्मण ! उसके निवास-स्थान को खोज निकालना संभव है क्या ?

सीता—दिन छिप चुकने पर पति से मिलने में असमर्थ चकवी की तरह वह तो यहीं खड़ी है अलग।

लक्ष्मण—असंभव है उनका खोज मिलना।

राम—इतने दिनों से फलता फूलता रघु का कुल मैं ने उजाड़ दिया ! (रोता है)

सीता—(शोक के साथ) ये बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं। क्या करूं ? इनकी आंखों, को बार बार धुंधला रहे आंसुओं को साहस कर मैं पोंछ दूं ? (कदम उठा कर) था, लोगों की फब्तियों से बचना ही चाहिये। इन से अभी तक मेरी चार आंखें नहीं हुईं। तीव्र शोकावेश से मैं विवश हुई जारही हूं। मुनिजन यहां प्रायः आते जाते रहते हैं ऐसा न हो कि कोई अकस्मात् मुझे इस दशा में यहां देख ले। तो चलूं लता जाल से ढके हुवे इस सरल मार्ग से आश्रम पहुँच कर कुश लव को मिलूं।

(निहारती हुई जाती है)

(ऋषि प्रवेश करता है)

ऋषि—भगवान् वाल्मीकि ने मुझे आज्ञा दी है कि "वत्स !

बादरायण ! मैंने सुना है कि लक्ष्मण को साथ ले रामचद्र इस वन में आये हुवे हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे हमें मध्यान्ह के नित्य कर्त्तव्यों में व्यग्र समझ कर बाहर ही बैठे रहें। तो तुम उनके पास जाकर कहो कि—मैं मध्यान्ह के कार्य्यों से निवृत्त होकर आप के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ"। तो चलूं गुरुजी की आज्ञा से रामचन्द्र जी का पता लगाऊँ।

(चलता है)

लक्ष्मण—(देख कर शीघ्रता से) भाई जी! यह कोई तपस्वी इधर ही चला आ रहा है।

(राम आंसू पोंछ कर, स्थिर हो बैठ जाता है)

ऋषि—(देख कर) इस लता-कुञ्ज की छाया में दो पुरुष से दीखते हैं। ये ही राम लक्ष्मण न हों? (सोचकर) अथवा सन्देह ही क्या है ?

पवन मन्द है, ग्रीष्म-भानु की भी किरणें हैं सुख-मय
केसरियों के साथ हरिणियां विहर रही हैं निर्भय।
इन्हें न छोड़ दुपहरी में भी सिकुड़ी तरु की छाया
निश्चय हीश्रीराम नाम का हरि यह वन में आया ॥१४॥

केवल अलौकिक प्रभाव से ही नहीं किन्तु सूरत शकल से भी तो यही निश्चय होता है--

देह सुदृढ़ व्यायाम से लोचन-कमल विशाल।
उन्नत वक्ष, सुदीर्घ भुज, ये दशरथ के लाल ॥१५॥
तो, इनके पास पहुँच कर सब हाल कह दूं। (पास जाकर) राजन् ! कल्याण हो।

राम—प्रणाम करता हूँ।

ऋषि—विजय हो।

राम—कैसे कष्ट किया आपने ?

ऋषि—सब आवश्यक कार्य्यों से निश्चिन्त होकर भगवान् वाल्मीकि आप की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

राम—(देख कर) ओह ! दोपहर ढल गया। तभी तो—
तरु-मूलों में काट कर कठिन काल-मध्यान्ह।
निकल चली छाया शनैः अब यह पथिक-समान ॥१६॥
और भी—दोपहरी के प्रखर ताप को जल में नहा बहाता
गीली, शीतल, कर्ण-पवन से मुख को सुख पहुँचाता।
शुण्डा-ताड़ित नदी-सलिल से कलकल नाद उठाता
तट की ओर आरहा यह गज वीचि-विभङ्ग बढ़ाता ॥१७॥

(सब जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त

❀ ❀ ❀

चतुर्थ अङ्क

(दो तापसियों का प्रवेश)

पहली—भगवान् वाल्मीकि के तपोवन में रामायण गाने के लिये आई तिलोत्तमा अप्सरा ने मुझे कहा—"मैं दिव्यशक्ति द्वारा सीता का रूप धारण कर श्री राम के सामने जा परीक्षा करूँगी कि सीता के लिये उनके हृदय में कृपा है या नहीं। इसलिये तू उन का पता लगा।" तो सखी यज्ञवती मुझे उनका डेरा दिखा दो।

यज्ञवती—सखी वेदवती! तिलोत्तमा जब बात कह रही थी तब पास ही घनी लता-झाड़ियों में छिप कर बैठे, श्रीराम के मित्र * आर्य्य कौषिक ने सब कुछ सुनलिया।

---

* मुद्रित पुस्तक में इस स्थल पर हसित पाठ है परन्तु आगे सर्वत्र विदूषक का नाम कौशिक आया है। मालूम होता है कि इस हसित के स्थान पर भी कौशिक ही होना चाहिये। अनुवादक।

वेद्वती—बड़ा गज़ब हो गया। भेद को जानने वाले उन के सामने यदि तिलोत्तमा ने सीता का अनुकरण किया तो यह उलटी हमारी ही हँसी होगी। तो चलूं प्रिय-सखी तिलोत्तमा को इस से सावधान कर दूं।

यज्ञवती—सखी वेद्वती! सीता अब कहां होगी?

वेद्वती—सुनो—आज सात दिन हुये कि इकट्ठी हुई सब तपोवन-वासिनियों ने भगवान् वाल्मीकि से प्रार्थना की कि "आज कल महाराज रामचन्द्र जी के यहां आये रहने के कारण आश्रम की इस पुष्करिणी पर सदा ही सब तरह के लोगों की दृष्टि पड़ती रहती है इसलिये कमल-फूल तोड़ने तथा स्नानादि कार्य्य के लिये यह हमारे योग्य नहीं रही।" तब ध्यान से निश्चल नेत्र वाले महर्षि ने थोड़ी देर तक कुछ सोचकर कहा—' इस पुष्करिणी पर आई स्त्रियां पुरुषों के लिये अदृश्य रहेंगी।" तब से श्रीराम की दृष्टि से बची हुई सीता सारा दिन उस पुष्करिणी के तट पर ही व्यतीत करती है।

यज्ञवती—कुश और लव को अपने साथ श्री राम के

सम्बन्ध का भी ज्ञान है ?

वेदवती – बचपन के कारण तथा मुनियों में ही रहने से उन्हें तो यह भी मालूम नहीं कि साथ रहती, उनकी माता का नाम क्या है ? इतने दिनों से अलग ही रहने के कारण समाप्त हो चुकी, श्री राम की चर्चा की तो बात ही क्या ?

यज्ञवती—मालूम है तुम्हें कि श्रीराम इसी तपोवन में आये हुवे हैं ?

वेदवती—वे क्यों आये ?

यज्ञवती—तुम तिलोत्तमा की ओर जाओ, मैं सीता के पास चलूं।

(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(दुपट्टा ओढ़े हुए सीता और यज्ञवती का प्रवेश)

यज्ञवती—सखि सीते ! दो दुपट्टे ओढ़ने का यह अपूर्व प्रकार तुम्हें किसने सिखाया ?

सीता—लगातार बहरहे, जल में तरङ्ग उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त शीतल, पुष्करिणी-पवन ने ।

यज्ञवती—शरच्चन्द्र की चन्द्रिका सा शुभ्र, सुन्दर, सान्द्र सौरभ के कारण मस्त होकर गूंज रहे भ्रमरों

के सङ्गीत से यह दुपट्टा, तुम्हारी इस वियोगावस्था के अनुकूल नहीं।

सीता—सखी! महाराज की आज्ञा से मिले चौदह वर्ष के वनवास में जब हम चित्रकूट को छोड़कर दक्षिण की ओर चले तो बहुत दिनों साथ रहने के कारण मेरी सहेली बनगई वनदेवी मायावती ने चिन्तित हो अपने स्मृति-चिह्न के रूप में यह चन्द्रमा सा श्वेत, सुगन्ध-सुवासित, दिव्य दुपट्टा, मुझे भेंट किया था। इतने दिनों मेरे और आर्यपुत्र के हाथ में रहने के कारण वह मुझे अत्यन्त प्रिय होगया है और जो आज इस प्रवास-दुख में भी मेरा संगी है वही यह दुपट्टा आज मैंने ओढ़ लिया है। (रोती है)

यज्ञवती—रोओ मत प्यारी सखी! यह तपोवन-वास वनवास जैसा दुखदायी तो नहीं।

सीता—मैं कैसे न रोऊं। आज मेरे स्वामी इस तपोवन में आये हैं इन्हें देखकर मेरा वियोग-दुःख दुगना होगया है। इसे कैसे सहन करूं? मैं असहाया आहें भरभर दिन और तारे गिनगिन लम्बी रातें काट रही हूं। क्या यह दुःख का कम कारण है?

यज्ञवती—भाग्य में ये दुःख भोगने लिखे थे। अब तुम यहीं पुष्करिणी के किनारे बैठ इन पक्षि-युगलों की विलास-लीलाओं को देख-देख कर ज़रा अपने दिल को बहलाओ, मैं भी इतने अपना काम देखूं। (चलती है)

सीता—(पुष्करिणी को देखकर) यह हंसों का जोड़ा कैसा धन्य है जो इस प्रकार विरह-रहित होकर संयोग-सुख को लूट रहा है। दम्पतियों को प्रेम का उपदेश करने के लिए, मेरे वियोग के समान योग्य उपाध्याय, कोई नहीं। एक दूसरे के चित्त को चुराने वाले हावभाव से ये पक्षी आपस में कैसे चोचले कर रहे हैं?

यज्ञवती—एकदम, शीघ्र ही अपने अपने आसनों से उठकर अपनी पत्नियों के कन्धों पर वल्कल-दुकूल को सँवारते हुवे, आनन्द और आश्चर्य से विकसित लोचनों वाले सारे मुनिजन एक ही ओर को मुंह किये चल दिये--मालूम होता है कि महाराज रामचन्द्र आ पहुंचे।

(राम तथा चिन्तित कण्व का प्रवेश)

कण्व—भगवान् वाल्मीकि ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं

नैमिशारण्य के सुन्दर सुन्दर दृश्य दिखला कर इनका कुछ मनोविनोद करूं। किन्तु ये इतने चिन्तातुर हैं कि आगे २ चल रहे भी मुझे नहीं देखते। साथ ही—

समतल पथ में भी तो इनके पैर लड़खड़ा जाते,
बारबार पीछे रहजाते धीरे-धीरे आते।
नहीं देखते अति सुन्दर भी वन में दांये बांये,
सजल-नयन, चुप, चले आरहे मुंह नीचे लटकाये॥ १॥

(पास जाकर) राजन्!—

राम—ओह! मित्र, तपस्वियों के मुख में यह सम्बोधन शोभा नहीं देता। अथवा यह आयु का अपराध है तुम्हारा नहीं—

शैशव में मैं 'राम' तुम्हारा, तुम थे 'कण्व' हमारे।
हम 'राजन्!' तुम 'आर्य!' कर दिए अब यौवन ने न्यारे॥२॥

कण्व—ओह! कैसा धीर और उदार उलाहना है?

राम—कहो क्या कह रहे थे?

कण्व—सुमन-सुवासित सकल-दिशायें, छाई है हरियाली,
लदी फलों से झूम रही है सुन्दर डाली-डाली।
घिरी श्याम-वन-माला, मानो जलदावलि झुक आई,
दृश्य तुम्हारे नयनों को हैं क्या ये कुछ सुखदाई॥३॥

राम—मेरा हृदय भक्ति-भाव से ऐसा भर रहा है कि उसे सुखदाई या असुखदाई—इस विषय में विचार करने का भी अवसर नहीं। देखो—

दाव-दहन को यज्ञानल सा, यूप द्रुमों को मान,
विहगों के कलरव को कोमल मुनिजन-साम-समान।
गौरव से इन वन-हरिणों को समझ तपोधन शान्त,
ज्यों-त्यों कर पद धरता हूं मैं इस नैमिश के प्रान्त ॥ ४ ॥

कण्व—परम धर्मपरायण, सारे संसार के अभ्युदय और निःश्रेयस के कारणभूत, आप-सरीखे महाराज के लिये तपश्चर्याओं के निर्विघ्न सिद्धिक्षेत्र, तथा अपने पूर्वज-राजर्षियों से सेवित इस नैमिशारण्य में भक्ति होना उचित ही है।

केवल एक-धनुष के बल यह भू-मण्डल अपना कर,
सौ-यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बनाकर।
रघुवंशी दे भुवन-भार पुत्रों को चौथेपन में,
मोक्षसिद्धि के लिए सदा से आते हैं इस वन में ॥ ५ ॥

(राम प्रणाम करते हैं)

कण्व--अन्य तपोवनों से विलक्षण, इस नैमिश की महिमा को देखो—

यहां रह रहे चन्द्रचूड़ की चन्द्रकला की निर्मल—
ज्योत्स्ना से मिल सूर्य-तेज भी हो जाता है कोमल—

कुम्हलाता न द्रुमों के पल्लव, पल्वल-जल न जलाता,
ताप न देता, नयनों को वह केवल दृश्य दिखाता ॥ ६ ॥

और भी—प्रतिदिन यज्ञ रचाने से हैं रहते इन्द्र यहीं पर.
सुरतरुओं के बदले इनमें अब बंधते हैं करिवर।
ये द्रुम-ऊंची आंख उठाकर जिन्हें देख सब पाते,
ऐरावत की कण्ठ-रज्जु के चिन्हों को बतलाते ॥ ७ ॥

राम—(देखकर) जिसमें निरन्तर बड़े २ यज्ञ हो रहे हैं ऐसे इस पवित्र वन ने इन्द्र के हृदय से नन्दन-वन को भी उतार दिया। तभी तो—
सुरपति के आवाहन-मन्त्रों को सुन सुन खिसियानी।
माला छोड़ शची रखती है वेणी विरह-निशानी ॥ ८ ॥

कण्व—यह और नहीं देखते क्या ?
मत्त-मतङ्गज सामगान के सुनने में लवलीन,
आंख मूंदकर, स्तब्ध-कर्ण हो, बैठे स्पन्द-विहीन।
अपने गालों पर मंडराते, मधुपीने में मग्न,
भ्रमरों की अभिलाषाओं को करते यहां न भग्न ॥ ९ ॥

राम—(हँस कर) यहां आश्चर्य ही क्या है ?
मुनियों के पावन मधुर सामगान अवदात।
मन वियोगियों के हरें करियों की क्या बात ? ॥१०॥

कण्व—(मन ही मन) ओह ! प्रवास के कारण राम को

कितना खेद है। ये पशु-पक्षियों की अपेक्षा भी प्रवासियों को अधिक शून्य-हृदय समझते हैं।

(प्रकाश) इधर भी ध्यान दें—

बिन-वसन्त भी मुनि प्रभाव से खिली मंजरी वाली,
छोड़ छोड़ इस पावन-वन में घनी आम की डाली।
मेघ-मालिका जैसे उठते होम-धूम से डर कर,
कमल-कोष में छिपने को ये भाग रहे हैं मधुकर ॥११॥

राम—यह क्या ? निरन्तर आहुतियों से बढ़ता हुआ यह धूम-समूह भ्रमरों की तरह मुझे भी सताने लगा।
(धूम-पीड़ा का अभिनय करता है)

कण्व—सचमुच ही तुम्हारी आँखें धूंए से व्याकुल हो रहीं हैं।

राम—

रो रो प्रिया-वियोग में दुखी हुए ये नैन।
उठे होम के धूम से और हुवे बेचैन ॥१२॥

कण्व—अच्छा तो तुम सामने वाली इस आश्रम-पुष्करिणी में स्नान कर, इसके शीतल जल से धोकर आंखों की जलन को दूर कर घड़ी भर यहीं आराम करो, मैं भी इस अग्निहोत्र के समय कुलपति जी की सेवा में उपस्थित हो जाऊँ। (जाता है)

राम—(चल कर) इस पुष्करिणी में उतरूं। (उतर कर) अहा इस सरोवर का जल कैसा निर्मल है? (पानी में परछांई देख कर शीघ्रता से) यह क्या प्यारी भी यहीं है? (प्रसन्नता तथा आश्चर्य का अभिनय करता है)

सीता—(देख कर) ओह! क्या हो गया मुझे? हंसों के जोड़े को देखने में इतनी भूल गई कि आ० अचानक आपहुंचे इन्हें भी न जान सकी। तो हट चलूँ यहां से? (हट जाती है)

राम—यह क्या? मेरा अभिनन्दन किये बिना ही प्यारी चल दीं।

पीले मुख, आकुल हो फिर फिर माथे पर छितरातीं—
अलकों से चिर- विरह व्यथा की अपनी कथा सुनाती।
कर कर विपुल मनोरथ दीखी वर्षों में क्षण भर को
मुझे छोड़ कर मेरी प्यारी फिर यह चली किधर को?॥१३॥

तो इसे पकड़ जो लूँ। (बाहें फैला कर) यह तो प्यारी नहीं, किन्तु—

प्रिया जा रही थी कहीं पुष्करिणी की राह।
ठगा गया मैं देख कर जल में उसकी छांह ॥१४॥

तो इस छाया की कारणभूत असली प्रिया को

ढूंढूं। (ढूंढ़ता है) आना जाना न होने के कारण यह पुष्करिणी का तट निर्जन है। किन्तु छाया भी आकृति के बिना हो नहीं सकती। यह क्या रहस्य है?

सीता—आर्यपुत्र को मेरा प्रतिविम्ब तो दिखाई दे रहा है पर मैं नहीं—यह क्या बात है? (सोच कर) ओह मैं समझ गई। यह मुनि की कृपा है कि इस पुष्करिणी पर तपोवन की स्त्रियों को पुरुष की आंखें नहीं देख सकतीं। यदि महर्षि की कृपा से यह छाया भी अदृश्य हो जाती तो मुझ पर बड़ा अनुग्रह होता। मैं यहां से हट जाऊँ जिससे कि यह छाया भी इन्हें न दीख सके। (हटती है)।

राम—अच्छा तो, निर्मल जल में पड़ रहे प्यारी के प्रतिविम्ब को ही देखूँ (देख कर) अब वह भी ओझल हो गया। (मूर्छित हो जाते हैं)

सीता—हा धिक्! हा धिक्! ये तो बेहोश हो गये! तो चलूँ इनके पास। (जाती है) अथवा, यदि मेरे देखने से ये बिगड़ उठे तो मुनिजन मुझे ढीठ समझेंगे। तो लौट जाऊँ? (लौटती है)

या, यह समय उचित अनुचित का विचार करने का नहीं। भले ही ये नाराज़ हों और मुनि-जन भी मुझे ढीठ कहें। मैं ऐसी दशा में पड़े इनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। (पास जाती है) सब लोकपालो ! सुनो—आर्यपुत्र ने मुझे निकाल दिया है। मैं आज अविनीत होकर इनकी आज्ञा का भंग नहीं कर रही किन्तु शोकातिशय से मुझे अपने पर काबू नहीं रहा इसलिये मैं यह गुस्ताख़ी कर रही हूँ। (पास पहुँच कर, देखकर) हाय, हाय, कैसे अचेतन पड़े हैं ? (आलिंगन करती है) (राम फिर होश में आते हैं) (सीता हट जाती है)

राम—मेरा शरीर अकस्मात् ही पुलकित क्यों हो रहा है ?

सीता—उस तरह निकाली गई, तथा इस तरह ढिठाई कर, मैं सचमुच डर गई हूँ।

राम—(रोते हुए) प्यारी ! लग जा हृदय से......

सीता—मैं निर्दोष हूं।

राम—.........(दे दर्शन चित चोर !) ⟶

सीता—तुम्हारी वह आज्ञा आज भी अटल है। मैं अभा-गिनी क्या करूं ?

राम —......हो प्रसन्न मुझ पर प्रिये !

सीता—मेरी भी यही प्रार्थना तुमसे है ।

राम—.........क्यों तू हुई कठोर ॥१५॥

सीता—उलटा चोर कोतवाल को डांटे ।

राम-- देवी ! तुझ से है विनय

सीता--क्या आज्ञा है?

राम—.........चारु-चरित्र अदोष ।

सीता--ओह ! वे प्राण अब परित्याग के योग्य नहीं ।

राम--तुझे निकाला देश से......

सीता--परिजनों पर तुम्हारी प्रभुता है ।

राम—

मुझ पर करो न रोष ॥१६॥

सीता—तुम प्रसन्न हो । मैं तो सदा से प्रसन्न हूं ।

राम--कब भुज-तकिया दे तुम्हें एक शयन में बात—

ते तुझसे काट दूं पूर्ण-चन्द्र की रात ॥१७॥

सीता—हे जनापवाद भीरु ! मैं तो यहीं हूं और तुम व्या-

(कुल हो रहे हो ।)

राम—हा ! मेरी प्यारी ! जनक दुलारी ! मुझ से बोल ।

मूर्छित हो जाते हैं

सीता—हैं, वे तो फिर बेहोश हो गए । लाऊं इन्हें होश में

(आंचल से हवा करती है)

राम - (हाथ बढ़ा कर आँचल पकड़ लेते हैं) यह क्या ? कपड़े का पाल्ला सा, कौन होगा यह ? (सोच कर) अथवा—

विना प्रिया के कौन है जन जगती पर धीर।
निज अंचल से कर सके मुझ पर जो कि समीर ॥१८॥

इसे देखूं तो (आँखें खोलते हुए) लगातार आँसू भर आने से दीखता कुछ भी नहीं। इस कपड़े को खींच कर छुड़ालूं ? (आंचल से आँसू पोंछते हुए उस दुपट्टे को खींचते हैं)

सीता - (दुपट्टे को छोड़ देती है) आर्य पुत्र ! तुमसे ही रूठे हुए, इस पराये जन के दुपट्टे के पल्ले से, अपने आँसू पोंछना तुम्हें उचित नहीं।

राम—(गिरे हुए दुपट्ट को देख कर) यह क्या ? केवल दुपट्टा ही दीख रहा है उसका ओढ़ने वाला नहीं।

हो उतावला, मैंने खींचा, किसका अंचल बल से।
चारु चन्द्रिका, कंचुलिका सा, गिरा गगन के तलसे ॥१९॥

(फिर देख कर) फिर मैं अपने आपको उतावला या जल्दवाज क्यों कहूँ ? जब कि निश्चय से यह नहीं है जो पहिले पहिल चित्रकूट में वन-देवता ने दिखाया था—

दाँव जुवे में, प्रणय केलि में कण्ठ-पाश था बनता,

रति लीला के बाद खेद को पंखा बन था हरता।
निशा-कलह में मृगनयनी का जो था बना बिछावन,
पाया वही दैव से मैंने प्रिया-दुकूल सुहावन ॥२०॥

सीता—भाग्य से पहिचान लिया आर्य पुत्र ने।

राम—अपनी प्यारी के प्यारे इस दुपट्टे का क्या सत्कार करूं? (सोच कर) यूं हो, यही इसका असाधारण अद्वितीय सन्मान है। (ओढ़ लेते हैं) (दुपट्टा ओढ़े हुए अपने को देख कर) मुझे दो दुपट्टे ओढ़े हुए देखकर मुनिजन कुछ का कुछ सोचने लगेंगे। तो अपना दुपट्टा उतार दूं? (उतारता है)

सीता—(उठा कर प्रसन्नता से) जान बची लाखों पाये। (सूंघ कर) मेरे सौभाग्य से इनके इस दुपट्टे में इतर फुलेल की महक नहीं। रघुवंशी सचमुच सच्चे होते हैं! (ओढ़ कर) प्यारे के आलिङ्गन के समान स्पर्श-सुख देने वाले इस दुपट्टे को ओढ़ कर मेरा शरीर ऐसा पुलकित हो रहा है मानो मैं उनके हृदय पर सिर रख कर विश्राम कर रही हूँ।

राम—(विस्मय से) मेरा दुपट्टा पृथिवी पर पड़ने से पहिले ही किसी ने बीच में उड़ा लिया तो मैं समझता हूं कि मेरे मनोरथ अब शीघ्र ही फलने फूलने वाले हैं।

(सोचता हुआ) उठाये जाते हुए दुपट्टे की छाया तो पानी में दीखे पर सीता नहीं। तपोवन निवासी-मुनियों के प्रभाव से उसमें यह शक्ति आ गई होगी। तो तुरंत ही उससे भेंट कैसे हो? प्यारी! क्या पिछली सारी ही वातें तूने भुलादीं? जो अपनी सूरत भर दिखाकर भी मेरी आंखों को शीतल नहीं करती।

सीता—वे पुरानी बातें अब कहां?

राम—

चित्रकूट में फूल वीनने तू आजाती आप,
कभी कभी मैं भी पीछे से तब आकर चुपचाप।
झट से झपट उठा लेता था, फूल वखेर दुकूल
प्यारी प्यारी उन वातोंको गई आज क्या भूल? ॥२१॥

सीता—(हंस कर) तभी तो तुम से किनारा किये हुए हूँ ढीठ!

राम—कुछ भी नहीं बोलती?

सीता - यहां से मेरे चले जाने का समय, सायंकाल सिर पर आ पहुँचा, और इन्हें इस दशा में अकेले छोड़ जाना उचित नहीं क्या करूं? (चारों ओर देख कर) सौभाग्य से यह प्रिय वयस्य कौशिक, किसी

को खोजता हुआ सा, कुतूहल से इधर उधर देखता हुआ यहीं आ रहा है। तो हट जाऊं वहां से। (जाती है)

(किसी को खोजते हुये वितूषक का प्रवेश)

विदूषक—महाराज कहां होंगे ? (घूमकर और देखकर) सुस्त किन्तु सुन्दर आकृति वाला, मेरा प्रिय-मित्र इस पुष्करिणी के किनारे चिन्तित सा बैठा है। चलूं इसके पास । (पास जाकर) जय हो।

राम—(देखकर) सौभाग्य से प्रिय-मित्र कौशिक चले आरहे हैं। मित्र कौशिक किधर से भूल पड़े ?

विदूषक—आज तुम्हें ढूंढ़ते २ ही सुबह से शाम करदी।

राम—मुझे ढूंढ़ने को इतना आकाश पाताल क्यों एक किया ?

विदूषक—आज बहुत सुबह ही मोतिया के मण्डप में छिप कर बैठे मैंने, घुलमिलकर आपस में बातें करती हुई अप्सरा और मुनि-कन्याओं के मुख से एक गुप्त षड्यन्त्र का पता लगाया था। वह तुम्हारे लिये कुछ अप्रिय है और अन्दर अटक रहे मूढ-गर्भ की तरह मुझे बड़ा परेशान कर रहा है।

राम—षड्यन्त्र कैसा ?

विदूषक—क्या तुम नहीं जानते उस श्रीमती······

राम—(कानों में उंगली देकर) बस, रहने दो। किसी स्त्री के सम्बन्ध की चर्चा है।

विदूषक—डरो मत। मैं राम ही का मित्र तो ठहरा। क्या तुम नहीं जानते स्वर्ग की अप्सरा उस श्रीमती को······ ?

राम—(मन ही मन) स्वर्ग की अप्सरा के सम्बन्ध में यह चर्चा है। इसके सुनने में कोई दोष नहीं। (प्रकाश) कौनसी अप्सरा-उर्वशी या तिलोत्तमा ?

विदूषक— तिलोत्तमा शिलोत्तमा तो मैं कुछ जानता नहीं। कोई भी हो--वह बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई, पूजनीया, जनक कुमारी का रूप धारण कर तुम्हारा उपहास करना चाहती है।

राम—(मन ही मन) हाय कष्ट ! ठीक ही पता लगाया है कौशिक ने। अन्यथा साधारण, मानव स्त्रियों में यह कैसे संभव है कि प्रिया की समीपता का सूचक दुपट्टा तो दीखे पर प्रिया स्वयं न दीखे। अवश्य ही इच्छानुसार रूप धारण कर लेने वाली तिलोत्तमा ने मुझे ठग लिया।

निर्मल जल की चाह से तृषित, मोह के साथ।

मरु-मरीचिका वारि में वढ़ा रहा था हाथ ॥ २२ ॥

(दुपट्टे को देखकर) बिलकुल वैसा ही यह दुपट्टा भी कैसे बना डाला उस जादूगरनी ने। दूसरों को ठगने में कैसे कमाल की होशियारी है ?

विदूषक—मित्र ! शरमाये से दीखते हो। मालूम होता है कि आगये उसके झांसे में।

राम—हां आ तो गया।

विदूषक—मेरा पता लगाया हुआ भेद कभी झूठा हो सकता है ?

(नेपथ्य)

उठते हुये प्रचण्ड-पराक्रम नृप की तरह दिवाकर
पहिले प्रवल-प्रताप-ताप से सारा लोक तपाकर।
आयु समान दिवस ढल जाने पर सब तेज गंवाकर
सायं समय होगया क्रम से अब यह मृदुल-सुखाकर ॥२३॥

राम—(देखकर) सूर्य भगवान् छिप रहे हैं।

हृदयेश्वर से मिलने के दिन अपने गिनतीं विरही—
वधुओं की उन मुकुलित होतीं अंगुलियों के सँग ही।
कमल मूंदता एक एक कर अपनी पंखड़ियां सब
अस्ताचल के आंगन में है अस्त हो रहा रवि जब ॥२४॥

और भी—

बागडोर खींचने से थमते हैं सारथी के
पड़ने से चाबुक के जोर भो हैं बांधते ।
थम भी न सकते हैं, सकते न भाग भी ये
ढाल से उतरते हुए हैं पैर काँपते ॥
ऊंच नीच वाले अस्त्र शैल के शिखर से ये
फिसल फिसल जाते खुरों को सम्हालते,
भानु के तुरंग अब उतर किसी प्रकार
जारहे अपार पारावार को फलांगते ॥ २५ ॥

(सब जाते हैं)

चौथा अंक समाप्त



पंचम अङ्क

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(नेपथ्य की ओर देखकर) ऋषिमुनियों के आने का समय हो रहा है, जल्दी करो तुम भी।

(राम का प्रवेश)

राम—नहा, हवन कर, उदय होरहे रवि का कर अभिनन्दन।
आया करने को प्रभात में मुनियों का पद-वन्दन ॥१॥

विदूषक—यह है सभा-मण्डप। चलो इसमें।

राम—(प्रविष्ट होकर चिन्ता का अभिनय करता हुवा)
ओह ! आश्चर्य है, कल कैसी हुई ?
निर्मलता से शून्य-रूपमय उस जल में देखा, बाला-
का प्रसन्नमुख, फीकी गालों पर बिखरी अलकोंवाला॥२॥

या यह सब तिलोत्तमा के हाथों की सफाई ही थी ?
उसके हाथों गुंथी हुई सी गूंथे कुन्द-कुसुम-माला,
चिन्ह बना दे रेती में उन पैरों की समतावाला।
जल में बिम्ब दिखादे उसका, करके कुछ कौशल काला,
वसन-पवनसे पर न रामको छू सकती वह सुरबाला॥३॥

(चिन्ता का अभिनय करता है)

विदूषक—यह चिन्तित सा दीख रहा है। तो आज बैठकर इसे आग्रह पूर्वक कहूं। (बैठ कर) मित्र ! नवमेघ के समान सुन्दर, नीले रंगवाले, गले में पड़े मोतियों के हार से सुशोभित, बहुत ऊँचे कठिनाई से चढ़ने योग्य, नीलम-जड़े स्तम्भ के समान दिखने वाले तुम्हें जहां तहां बैठे देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। इसलिये अब तुम सेवा के लिये आये हुवे अनेक नृप-सामन्त-रूप भ्रमरों से गूंज रहे दरबार के परिजनरूप पंखड़ियों से अलंकृत, लक्ष्मी के निवास-भवन सदृश, सभामण्डपमय कमल के कोष तुल्य इस सिंहासन पर बैठकर विष्णु भगवान् के नाभिकमल में विराजमान ब्रह्मा की शान को फीका करदो।

राम—तुम जो कहो। (बैठ कर चिन्ता का अभिनय करता हुवा) आज मैं, मानों नये सिरे से सुख दुःख का अनुभव करने वाला बन गया। (चिन्ता का अभिनय करता हुवा तथा हाथ को हृदय पर रखकर)

पूर्ण निराशा ने यह मन ही कर डाला था नष्ट,

इससे चिर विरही भी मुझको, अब तक हुवा न कष्ट।
छाया-दर्शन-आदि कारणों से यह हो उत्पन्न,
करने लगा मुझे सुख दुख से पुनः प्रसन्न विषएण ॥४॥

[चिन्ता का अभिनय करता है]

विदूषक—(देख कर मन ही मन) अब इसके मन की बात को ताड़ूं। (प्रकाश) हे मित्र ! ये तुम्हारे सिंहासन के सिंह, बहुत भारी बोझ उठाने के कारण थके हुवे से, मुख विवर से निकल कर गिरती हुई गजमुक्ताओं के बहाने से मानों झाग छोड़ रहे हैं। मैं समझता हूं कि भुजाओं में पृथिवी को, और हृदय में पृथिवी-पुत्री को धारण करते हुवे तुम बहुत भारी होगये हो।

राम—(मन ही मन) सीता की चर्चा छेड़ कर कौशिक भेद लेना चाहता है। यह मेरा बचपन का मित्र है तो इससे क्या छिपाना ? (प्रकाश) मित्र ! ठीक है, मुझे हर घड़ी सीता का ध्यान बना रहता है।

विदूशक—दोष के सम्बन्ध में या गुण के ?

राम—न दोष के, न गुण के।

विदूषक—इन दोनों के सिवाय स्त्रियों को स्मरण कर ही कैसे सकते हैं ?

राम—साधारण स्त्री-पुरुषों का प्रेमावेश, कारण पर अवलम्बित होता है किन्तु सीता-राम का प्रेम वैसा नहीं।

सुख दुख में सम, प्रकट स्वयं ही होने से जिसको कहकर—
मुख से नहीं बताया जाता, अपना सा ही वह उस पर।
गुण दोषों की जहां न गणना, जिसमें नहीं स्वार्थ का गन्ध,
हम दोनों के हृदयों में तो वही प्रेम-मय था सम्बन्ध ॥५॥

विदूषक—ऊपर से मीठी २ बातें बनाकर तुमने कुसुम-सुकुमार भोली भाली सीता देवी को खूब ठगा। वैसे ही मुझे भी ठगना चाहते हो।

राम—मेरा सीता से सर्वथा ही प्रेम न था—यह तुमने ठीक नहीं समझा।

बाहर रूखा—हृदय में मेरे प्रेम अपार।
जैसे कठिनमृणाल के भीतर कोमल तार ॥६॥

विदूषक—जैसे बड़े भारी बड़वानल से निरन्तर जलता हुवा भी समुद्र अपने महत्व को नहीं छोड़ता उसी तरह अतिप्रबल हृदय सन्ताप से सदा दग्ध होते हुवे भी तुम में कुछ अन्तर नहीं आया. पर स्वभाव से ही तुच्छ, मैं बेचारा तो सीतादेवी की दुर्दशा को याद करते ही दावानल से ओस की

बूँद की तरह एक दम सूख जाता हूँ। (रोता है)

राम—यदि तुम आज भी सीता को स्मरण योग्य मानते हो तो उसका परित्याग करते हुवे मुझे तुमने क्यों न रोका ?

विदूषक—प्रसन्न-मुख राजा को भी कोई सेवक समझाने का साहस नहीं कर सकता, फिर क्रोध से भयंकर मुखवाले की तो बात ही क्या ?

राम—मित्र ! मुझ जैसे, क्रोध में इतने अन्धे नहीं होजाते कि अपने हित-चिन्तकों की बात भी न सुनें।

पीड़ित करने लगे प्रजा को जब नृप अत्याचारी
है कर्तव्य-रोकदें उसको सचिव आदि हितकारी।
बहुत तपाता है यह जग को जब कि मरीचि-माली
आकर रोक उसे लेती है शान्तिमयी-जलदाली ॥७॥

मित्र ! सीता की चर्चा छेड़ कर तो हम दोनों को ही दुख देने वाली है इसलिये तुम ड्योढ़ी पर जावो और दरवानों से कहो कि ऋषि-मुनियों के पधारने का समय हो रहा है इसलिये वे सब द्वारों पर वर्दी में तैनात हो जावें।

विदूषक—राजन् ! कन्दमूल-फल खाने वाले, पेड़ों की छाल पहिनने वाले, लम्बे मोटे सोटों वाले इन बाबाओं

की ऐसी आव भगत क्यों ?

राम—मित्र ! तुम्हारा ऐसा सन्देह यहां उचित नहीं। इनकी ज्ञान-संपत्ति ही तो जीवात्मा-परमत्मा के संयोग सम्बन्धी सब गुत्थियों को खोलने वाली और पुरुष के परम कर्त्तव्यों का ज्ञान कराने वाली होती है। देखो--

इन पूज्यों के हाथों दीपित हुवे विना, हृदयास्थित—
ज्योति नित्य भी वस्तु-तत्व को कर सकती न प्रकाशित।
जब तक पावक नहीं पवन की वह सहायता पाता
एक तुच्छ से तृण-कण को भी देखो-नहीं जलाता ॥८॥

विदूषक—यदि सचमुच ही तपस्वियों का सत्संग इतना लाभकारी है तब तो मैं फ़ौरन जाकर तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हूँ। (बाहर जाकर पुनः लौटकर) ओ हो हो ! अभी तुम्हारी आज्ञा से मैं द्वार पर गया तो देखा कि सलोने साँवले, किशोर आयुवाले, बालभाव के कारण बर्हिद्वार पर उगे मंगल-वृक्षों के कोमलाङ्कुर सरीखे, शरीर का उठान पूरा न होने पर भी बड़े चुस्त चालाक चौकन्ने, रूप की मोहिनी से कामदेव के कुमारों के समान शोभायमान, साल वृक्षों की तरह विशालकाय, फुर्तीले, चंचल, महाबलशाली,

धीर गंभीर, अत्यन्त प्यारे, जिनमें, कहीं कोइ कोर-कसर नहीं, मानों तुम्हारे ही अंशावतार हों ऐसे दो तापस-कुमार आये हुवे हैं।

राम—(चाह के साथ) तो उन्हें मेरी आखों से क्यों छिपा रक्खा है ?

विदूषक—बाल भाव से सुन्दर, कुतूहल उत्पन्न करने वाले इन दोनों का परिचय तो पहले सुनलो—

राम—कहो, कहो,

विदूषक—वे दोनों भगवान् वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं और वीणा के बजाने में उन्होंने कमाल ही हासिल कर रक्खा है।

वे कहते हैं—तपस्वियों का सम्मान करने के लिये राजपुरुषों को भी हमारी ही तरह पृथिवी पर बैठना चाहिये। हम एक महापुरुष के सम्बन्ध में एक महाकवि द्वारा बनाये, बड़े भावगर्भित, जिसे अभी तक किसी ने नहीं सुना, सरस, जिसका एक एक अक्षर बड़े मनोयोग पूर्वक चुन २ कर रक्खा गया है, ऐसे एक बड़े उच्च कोटि के संगीत को गान्धर्व वेद की विधि के अनुसार वीणा के साथ गाकर

सुनायेंगे। हमारी संगीतकला के ज्ञान से अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा क्या करता है—यह हमें देखना है। भगवान् वाल्मीकि ऋषि की हमें यही आज्ञा है।

राम—ओह! अपनी विद्या का इन्हें कैसा सच्चा अभिमान है? और इनका प्रस्ताव कैसा आत्मसम्मान के भावों से भरपूर है? मित्र! उनकी इच्छानुसार वचन देकर उन्हें तुरंत भीतर ले आवो। ऐसा न हो कि बाहर बहुत देर तक खड़े रहने से उकताकर वे लौट जायें।

विदूषक—अब उकताना कैसा? उनके परस्पर प्रेम, रूप-सादृश्य, और जुल्फ़ों वाले मुख को देख—महाराज दशरथ के सामने ऐसे ही राम लक्ष्मण दरबार में आया करते थे, इस तरह तुम्हारे बचपन और महाराज को याद कर डबडबाई आंखों वाले कंचुकी खड़े २ उनसे पूछताछ कर रहे हैं।

राम—हमारे बचपन जैसी उनकी सूरत शकल है?

विदूषक—वही तो।

राम—मेरी उत्सुकता बढ़ रही है। जल्दी लाओ उन्हें।

विदूषक--जो आज्ञा। (जाता है)

(विदूषक रास्ता बतला रहा है, तपस्वी लव कुश आते हैं)

विदूषक—इधर आइये इधर

(चल कर)

कुश--(एक ओर को होकर) प्रिय लव! अभी भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा से, मां को प्रणाम कर, राज-मन्दिर की ओर मेरे चल देने पर, बालों को संवार देने के बहाने कुटिया में लेजाकर मां ने तुझे अलग कौनसा गुप्त सन्देश दिया है?

लव--अलग कुछ नहीं। किन्तु वहां उस समय बहुत से तपस्वियों की भीड़ थी इसलिये मुझे कुटिया में लेजाकर, मेरे गले में अपनी बाहें डाल मुझे अपनी पतली कमर से लिपटा, हृदय से लगा, मेरा माथा सूंघ, गहरी सांस ले मुसकराती हुई, अपने कान से कुंडल को निकाल, मेरा मुख चूम, शंकित सी हो मां बोली--"पुत्र! अपने स्वाभाविक अल्हड़पन को छोड़ तुम दोनों राजा का सत्कार करना और उनसे कुशल प्रश्न पूछना।" बस यही।

कुश—कुशल पूछना तो ठीक है पर प्रणाम क्यों?

लव--नहीं क्यों ?

कुश—हमारे कुलवाले किसी के सामने नहीं झुकते।

लव—यह किसने कहा ?

कुश—मां ने

लव--उसी ने प्रणाम करने को भी कहा है। और बड़ों की आज्ञा पर तर्क वितर्क करना चाहिए नहीं।

कुश—चलो चलते हैं। समयानुसार जो उचित होगा देखा जाएगा।

(चलते हैं)

विदूषक—इधर को इधर को।

राम--(देख कर) कौशिक के साथ दोनों बालक आते हैं। इन्हें देख मेरा हृदय हाथ से निकला क्यों जा रहा है ? यह क्या मामला है ?

/ नहीं जानता-कौन ये, क्या है इनका भाव।
तो भी आँसू बह चले, चढ़ा चित्त में चाव ॥९॥
अथवा, इस में आश्चर्य ही क्या ?
बे-जाने भी सगे, कभी जब आगे आते
आकर्षण वे किसी तरह मन में उपजाते।
दोष गुणों की जो न परीक्षा भी कर पाता
देख चन्द्र को चन्द्रकान्त क्यों जल बरसाता ? ॥१०॥

देखूँ तो-ये कैसे हैं ? हैं, मैं तो देख भी नहीं सकता। ज्यों ज्यों इन्हें निहारता हूँ—मेरा हृदय भय, आनन्द, शोक और दया के एक अपूर्व मिश्रण में डूबता उतराता हुआ मूर्छित सा होजाता है। (मूर्छित सा होता हुआ) मेरी आँखें और आँसू ? किन्तु आँसू वह जाने से मेरा भरा हुआ हृदय हलका सा हो गया, मैं अब शान्त हूँ ? आँसू पोंछ साफ़ आँख से इन्हें फिर देखूँ (देख कर) गम्भीर और उदार गठन, शान्त और सुन्दर वेष रचना, विनीत और शानदार चालढाल--ये अवश्य ही किसी ऊँचे कुल के हैं।

विदूषक—ये महाराज हैं। इच्छानुसार आप इनके पास जाइये।

कुश—प्रिय लव ! तुझे याद ही होगा जो मैंने प्रणाम के विषय में कहा था ?

लव—हाँ, तो अब कैसे ?

कुश—ज्यों ज्यों मैं इस राजा की ओर बढ़ रहा हूँ—दिल को धड़कानेवाला एक रोब मुझे दबाता जा रहा है। मेरा उचित आत्माभिमान मुझे छोड़ रहा है। मेरा सिर इसके सामने झुके बिना नहीं मानता। लो, मैं तो यह झुक गया।

लव—मेरी तरह आप भी कैसे विवश होगये ? (दोनों प्रणाम करते हैं)

राम—मर्यादा भङ्ग करना तुम्हें उचित नहीं। लो इन्होंने तो प्रणाम कर ही लिया। ओह, मेरे सामने ब्राह्मण का सिर झुक गया (दुखी होता है)

विदूषक—तुम मनमारे से क्यों बैठे हो ? इनके प्रणाम को तुमने स्वीकार नहीं किया। इसमें तुम्हारी हानि ही क्या ?

राम—ठीक समझा कौशिक ने। शिष्टाचार-चतुर महानुभावो ! सुनो—

मुझे किया है सिर को झुका के
जो शीघ्रता से तुमने प्रणाम।
मेरे कहे से पहुँचे तुम्हारे,
आचार्य ही के चरणाम्बुजों में॥२॥

विदूषक—तुम्हारी आज्ञा को कौन टाल सकता है प्रिय मित्र ! प्रणाम का यह उत्तर सुन्दर है।

कुशलव—(उठ कर) महाराज सकुशल हैं ?

राम—तुम्हें देख कर कुछ कुछ। क्या हम से इस तरह कुशल-प्रश्न करना तुम्हें उचित है। अतिथियों के समान गले मिलना नहीं ? (आलिंगन कर) अहा !

हृदयग्राही स्पर्श है। (सोचकर) यद्यपि मैंने अभी पुत्रालिंगन-सुख को अनुभव नहीं किया तो भी समझता हूँ कि वह ऐसा ही होता होगा। गृहस्थी लोग तपोवनों में जाने की इच्छा क्यों नहीं करते-यह अब समझ में आरहा है)

(दोनों को आधे सिंहासन पर बिठाता है)

दोनों—यह राजासन है। हम इस पर नहीं बैठ सकते।

राम—बीच में कुछ और रहने से तो तुम्हारा व्रत न टूटेगा, आओ मेरी गोद में बैठ जाओ (गोद में बिठाता है)।

दोनों—(अनिच्छा का अभिनय करते हैं) राजन् इतना अनुग्रह न कीजिए।

राम—इतना मत शरमाओ।

शिशुजन शैशव के वैभव से बड़े बड़े गुणवाले,
लोगों के भी लालनीय हैं, गोदी के उजियाले।
मुग्ध, मृग लांछन को भी बाल भाव के कारण,
महादेव ने अपने सिर पर किया हुआ है धारण ॥१२॥

(सजल लोचनों से देखता हुआ फिर हृदय से लगाता है। विदूषक को देख कर)

तुम्हें याद है—देवी को छोड़े कितने वर्ष हुए?

विदूषक—(सोच कर) याद है मुझ अभागे को। (उँगलियों पर गिन कर) बहुत हिसाब क्या लगाना? अपने इन हाथों सीता देवी को छोड़े आज दस वर्ष तो अवश्य ही हो लिये।

राम—(कुमारों को देख कर) यदि प्रसव सकुशल हुआ हो और वह सन्तान आज जीवित हो तो अवश्य इन जैसी ही हो।

विदूषक—हाय! सहम गया हूं मैं तो इस अज्ञात परित्यक्त-पुत्र की चर्चा से। (रोता है)

राम—मैं भी इन तापस-बालकों को देखकर असह्य वेदना अनुभव कर रहा हूँ।

जिस जिस दशा को प्राप्त होते पुत्र के संभावना-
मय चित्र परदेशी पिता रचता हृदय को पट बना।
उस उस दशा में वस्तुतः ही पुत्र को फिर देखकर,
उसका हृदय हो हो द्रवित किस भांति जाता है उभर॥१३॥

(आलिंगन कर रोता है)

विदूषक—(सहसा घबरा कर) हा! छोड़ो छोड़ो, सांप! छोड़ो छोड़ो, इन तपस्वी बालकों का बाल भी बांका न हो, ये उतर आये सिंहासन से।

राम—(सहसा बालकों को छोड़ता हुवा) यह क्या? मित्र!

विदूषक—अवध-वासी बड़े बूढ़ों को मैं ने कहते सुना है कि सूर्यवंशियों से अतिरिक्त, कोई, यदि इस सिंहासन पर चढ़ जाये तो उसका सिर सौ टुकड़े हो जाता है।

राम—(जल्दी से) उतरो शीघ्र।

(दोनों उतर पृथिवी पर बैठ जाते हैं)

राम—तुम सकुशल तो हो। कोई कष्ट तो नहीं तुम्हारे सिर में ?

दोनों—हम बिलकुल भले चंगे हैं। कुछ नहीं हुवा हमारे सिर को।

विदूषक—अहो ! आश्चर्य है। इनके शरीर तो बिलकुल पहले जैसे स्वस्थ बने हुवे हैं।

राम—क्या आश्चर्य है ? (कुमारों को दिखाकर) शुभ आशीर्वादों से सुरक्षित होते हैं तपस्वियों के शरीर देखो—

तपोधनों के सामने क्या तीरों का ज़ोर ?
सुरपति का भी वह जहां कुण्ठित कुलिश कठोर ॥१४॥

(कुमारों को सम्बोधन कर)

तुम बिना कुछ बिछाये, ख़ाली फ़र्श पर क्यों बैठ गये ?

दोनों—हमने तो पहिले ही कहा था यह।

राम—अच्छा।

विदूषक—राजन्! ये तुम्हारे अतिथि हैं। उचित वार्तालाप आदि से इनका सत्कार करो।

राम—तुम्हारी मोहिनी मूर्ति को देखकर कुतूहल-परवश हो मैं पूछता हूं कि किस वर्ण और आश्रम को तुमने अपने जन्म और दीक्षा से सुशोभित किया है?

कुश—(बोलने के लिये लव को इशारा करता है)

लव—दूसरा वर्ण, पहला आश्रम।

राम—ये ब्राह्मण नहीं अतः इनके प्रणाम करने तथा नीचे बैठने से मुझे बहुत अधिक दोष नहीं लगा। अच्छा क्षत्रिय-कुलों के प्रथम पुरुष सूर्य, चन्द्र में से तुम्हारा वंश-प्रवर्त्तक कौन है?

लव—सूर्यभगवान्।

राम—कुल तो हमसे मिलता है।

विदूषक—दोनों का एक ही उत्तर है?

राम—तुम्हारा आपस में रक्त-सम्बन्ध भी है?

लव—सगे भाई हैं हम।

राम—सूरत शकल एक है, आयु में भी कुछ अन्तर नहीं।

लव—हम जोड़िया हैं।

राम—अब ठीक है। यह कहो कि तुम में से बड़ा कौन

है और उसका क्या नाम है ?

लव—(हाथ से कुश की ओर सङ्केत कर) आपके चरणों में प्रणाम करते समय मैं अपना नाम 'लव' उच्चारण करता हूं। और आप भी गुरु जी को प्रणाम करते हुए अपना नाम—(बीच में ही रुक जाता है)

कुश—मैं भी अपना नाम 'कुश' उच्चारण करता हूं।

राम—अहा ! कैसा शानदार शिष्टाचार है ?

विदूषक—भाई, नाम तो पता चल गये पर बड़ा कौन है-इसका उत्तर नहीं मिला।

राम— नहीं-हाथ के इशारे और नाम का उच्चारण न करने से बतला तो दिया कि कुश बड़ा है।

विदूषक—हां, अब समझा।

राम—तुम्हारे गुरु जी का नाम क्या है ?

लव—यही-भगवान् वाल्मीकि।

राम—किस सम्बन्ध से ?

लव—उपनयन-सम्बन्ध से।

राम—मैं तो तुम्हारे शरीर के उत्पादक पिता को पूंछ रहा हूं।

लव—उसका नाम मैं नहीं जानता। हमारे आश्रम में उसका नाम कोई नहीं लेता।

राम--ओह कैसा अद्भुत है ?

कुश—मैं जानता हूं उसका नाम ।

राम--कहो ।

कुश--निठुर ।

राम—(विदूषक की ओर देखकर) विचित्र नाम है ।

विदूषक--(सोचकर) यह पूछता हूं कि 'निठुर' इस नाम से उसे कौन बुलाता है ?

कुश--मां ।

विदूषक—कभी क्रोध में आकर वह ऐसा कहती है या सदा ही ।

कुश—लड़कपन के कारण जब हमसे कुछ भूल हो जाता है तो ताना देकर यूं कहती है-'निठुर के पुत्रो दंगा मत करो ।'

विदूषक—इनके पिता का नाम यदि 'निठुर' है तो स्पष्ट है कि उसने इनकी मां का अपमान किया होगा, उसे निकाल दिया होगा–उसका कुछ न विगाड़ सकती हुई वह उस क्रोध से बच्चों को डांटती है ।

राम – ठीक समझा तुमने (आह भर कर) इसी तरह के मुझे, धिक्कार है। वह बेचारी भी मेरे दोष के कारण अपने बच्चे को इसी प्रकार क्रोध भरे वाक्यों

ह क्‍ कि्‍या करती होगी। (आंखों में आंसू भरकर दखता है) वह 'निठुर' तुम्हारे आश्रम में है क्या।

लव—नहीं।

राम—(जल्दी से) उसके विषय में कोई समाचार मिल जाता है?

लव—(कुश की ओर देखने लगता है)

कुश—हमने अभी तक उसके चरणों में कभी नमस्कार नहीं किया। हां, मां की विरह-सूचक वेणी यह अवश्य बतला रही है कि वह कहीं जीता है।

राम—उसने कभी तुमसे प्यार किया है?

कुश—वह भी नहीं।

राम—ओह! कैसा लम्बा और दारुण प्रवास है कि इतने दिनों तक भी उसने तुम्हें नहीं देखा (विदूषक को देखकर) इनकी मां का नाम पूछने को मेरी बड़ी उत्कण्ठा है, किन्तु परस्त्री के सम्बन्ध में प्रश्न करना उचित नहीं। विशेषकर तपोवन में। तो क्या उपाय है?

विदूषक—(आपस में) ब्राह्मण की ज़बान पर कोई ताला नहीं डाल सकता। लो मैं पूछता हूं।

(प्रकाश) भाई, तुम्हारी मां का क्या नाम है?

लव—उसके दो नाम हैं।

विदूषक--कैसे ?

लव—तपस्वी लोग तो उसे देवी कहते हैं और भगवान् वाल्मीकि 'वधू'।

राम—यह कौनसा क्षत्रिय कुल है जो भगवान् वाल्मीकि के मुख से निकले 'वधू' शब्द से पूजित हो रहा है ?

विदूषक—क्षत्रिय कुल बहुत हैं। क्या पता चलता है कि यह कौन सा है ?

राम--ज़रा इधर तो सुनो मित्र !

विदूषक—(पास जाकर) आज्ञा।

राम--इन कुमारों का सारा वृत्तान्त क्या हमारे कुल की घटना से मेल नहीं खाता ?

विदूषक—कैसे ?

राम—देखो-सीता के गर्भ और इनकी आयु एक सी ही है। ये भी क्षत्रिय और सूर्य-वंशी हैं। ये भी जन्म से पहिले ही छोड़ दिये गये हैं। राजसिंहासन पर चढ़ने से इनका कोई अनिष्ट नहीं हुआ। 'निठुर' शब्द इनके पिता की निर्दयता को सूचित करता है। 'देवी' शब्द माता की महत्ता को प्रकट करने वाला

है। इस सारी समानता से मैं अभागा बहुत व्याकुल हो रहा हूं। (विकल होता है)

विदूषक—तुम्हारा मतलब है कि ये बालक सीता के ही गर्भ से उत्पन्न हुवे हैं?

राम—नहीं यह नहीं। हाय, तपोवन-निवासी-जनों के साथ ऐसा नाता मैं कैसे जोड़ सकता हूँ? किन्तु—

इस सुन्दर जोड़ी का यह कुल,
यह इनकी नव आयु किशोर,
यह उठान, यह रंग देह का,
वैसी ही यह विपद कठोर।
इन आंखों में खींच रहे हैं,
स-सुत-प्रिया की ये तसवीर,
देख देख कर जिसे हो रहा,
मेरा हृदय अधीर अधीर ॥१५॥

(चिन्ता तथा शोक का अभिनय करता है)

(नेपथ्य में)

"इक्ष्वाकु कुल के श्रेष्ठ कुमार कुशलव में से यहां कौन उपस्थित है?

दोनों—(सुन कर) हम दोनों ही हैं।

(नेपथ्य में)

'अब तक तुमने आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया?'

मुनिवर श्री वाल्मीकि कवीश्वर ने जो अति सुखदाई
कथा महारथ प्रथम पुरुष की कविता रूप बनाई ।
रघुपति को अति मधुर कण्ठ से जाकर वही सुनाना
समय दोपहर के न्हाने का किन्तु चूक मत जाना ॥१६॥

दोनों—महाराज ! गुरु जी का दूत हमें शीघ्रता करने के लिये कह रहा है ।

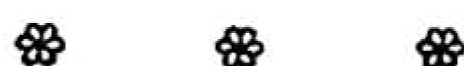
राम—मंगलकारी मुनि-आज्ञा का आदर मुझे भी करना ही चाहिये । और भी—

गाने वाले तुम, पुराण कवि, वह मुनिवर व्रत धारी
प्रथम प्रथम ही उतरी पृथिवी पर यह कविता प्यारी ।
अतिसुन्दर अरविन्द-नाम की कथा सकल मन हारी
हुवा मेल ही श्रोताओं का सुखद सुमंगल कारी ॥१७॥

मित्र ! मनुष्यों में यह कविता का अवतार अपूर्व ही हुवा है तो मैं भी सब इष्ट मित्रों के साथ मिलकर ही इसे सुनना चाहता हूँ । सब सभासदों को इकट्ठा करलो । लक्ष्मण को मेरे पास भेज देना । मैं भी बहुत देर तक बैठे रहने से उत्पन्न हुई इनकी थकान को ज़रा टहला कर दूर करवा दूँ ।

(सब जाते हैं)

पांचवां अङ्क समाप्त



षष्ठ अङ्क

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—कौशिक के मुख से सुनी महाराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था कर, मैं अब यहां महाराज के दर्शन करूँ (देख कर) ये आही रहे हैं महाराज—

तीनों अनुजों सहित इधर ही ये आये रघुनाथ।
मानों ऋग् यजु साम वेद हों अश्वमेध के साथ॥

(आगे आगे राम लषमण और पीछे पीछे कुश लव का प्रवेश)

सब—(चलते हैं)

कंचुकी–(पास जाकर) जय हो महाराज की। यह सभा-मण्डप तय्यार है, ये आप के आसन हैं (सब बैठते हैं)

कंचुकी–इधर भी देखिये महाराज! ये सब परिजन तथा पौर और जनपद भी आपका सत्कार कर रहे हैं।

राम—(देख कर) हमारे पास ही यह पर्दे में क्या है?

कंचुकी—ये हैं महाराज की माता-महा देवियाँ तीन।

तीन आप के अनुजों की हैं वधुएँ प्रणय-प्रवीन ॥

लक्ष्मण—(कंचुकी को लक्ष्य कर) आर्य ! बड़ी भाभी की गिनती तुमने न तो महादेवियों में की, न वधुओं में

राम—(गरम आह भर कर) कंचुकी ! जाओ तुम अपने स्थान पर।

कंचुकी—जो आज्ञा (जाता है)

राम—महानुभावो ! प्रारम्भ कीजिये--

कुश लव—तीन रानियाँ नृप-दशरथ ने व्याहीं अति-अभिराम
कौशल्या, केकय-नृप-तनया और सुमित्रा नाम।

राम लक्ष्मण—(प्रसन्नता से) कवि ने पिता जी को ही कथा का नायक बनाया है।

(दोनों नमस्कार कर आसन से नीचे खड़े हो जाते हैं)

कुशलव—कौशल्या माता ने जाये राम परम-अभिराम।

लक्ष्मण—(प्रणाम करता है)

कुशलव—जने केकयी-जननि ने फिर भरत भव्य गुणधाम ॥
पैदा किये सुमित्रा ने भी दो प्रिय-सुत निर्विघ्न।
लक्ष्मीवान् सुलक्षण विनयी श्री लक्ष्मण शत्रुघ्न ॥

राम—(लक्ष्मण को आलिंगन करता है)

कुशलव—(शिवधनु तोड़ राम ने पाई सीता जनक-दुलारी।
उसकी बहिन उर्मिला व्याही लक्ष्मण ने सुकुमारी)

भरत और शत्रुघ्न रहे दो कुंवर रूप बल-धारी।
उन्हें बिवाही गईं कुशध्वज की कन्यायें प्यारी॥
नव बिवाह, नववधुयें सुन्दर नव नव आयु किशोर।
चारों राजकुमार होगए अतिशय प्रेम-विभोर॥

लक्ष्मण—वाह वाह।

राम—देर न करो, गावो—

पिता वृद्ध, हम बालक छोटे, सिर गभुआरे बाल।
पौधे थे—साकेत वाटिका के सब वृक्ष-विशाल॥

कुशलव

श्री रघुपति के राज-तिलक की मची धूम जिस काल।
और भरत भी गये हुवे थे जब अपनी ननिहाल॥

राम (मन ही मन) निश्चय ही इस प्रसङ्ग में मझली मां को जली कटी सुनाई गई होगी। (प्रकाश) इस प्रकरण को छोड़ सीता-हरण से शुरू करो।

कुशलव—

शूर्पणखा के मुख से सुनकर सुन्दरता सीता की।
शील नहीं, पर तनु हरली, कर रावण ने चालाकी॥

लक्ष्मण—(राम की तरफ देखता है)

कुशलव—

बना विपुल पुल जलनिधि में, कर रिपु का काम तमाम।

सीता-सहित अयोध्या में फिर आपहुँचे श्रीराम ॥

राम—अहो, कैसा संक्षेप है ?

कुशलव—

राज्य प्राप्त कर राम, कभी जन-निन्दा से घबरा कर ।
बोले लक्ष्मण से—'सीता को आओ छोड़ कहीं पर'॥
बहुत विलाप-कलाप मचाती, शोक-विकल बेचारी ।
लिये गर्भ में पावन-रघुकुल-संतति सतत दुखारी ॥
सीता को ले साथ, बनैले पशुओं से अति भीषण—
निर्जन वन में छोड़ आगया कठिन-हृदय वह लक्ष्मण ॥

लक्ष्मण—ओह ! यह अपयश लक्ष्मण के मत्थे मढ़ा गया !

राम—इसमें तुम्हारा क्या दोष ? ये सब कारनामे राम के हैं, फिर—

कुशलव—गीति तो यहीं तक है ।

राम—(बेचैनी के साथ) लक्ष्मण ! सितम हो गया !

दोना-राम-लक्ष्मण—

वहां निराश जनक-तनया ने करली जीवन-हानी ।
अप्रिय-कथन-भीत-कविवर ने छोड़ी यहीं कहानी ॥

कुश—(एक ओर को) ये दोनों महाभाग सीता-संबन्धी कथा को सुनकर बहुत व्याकुल हो रहे हैं, तो पूछूं इनसे ? (लक्ष्मण को लक्ष्य कर) क्या आप ही दोनों

रामायण कथा के नायक राम लक्ष्मण हैं ?

लक्ष्मण—हां हम ही दुख भोगने वाले ।

कुश—आप ही सीता को वन में लेगये थे ?

लक्ष्मण—लज्जा से) (हां मैं ही दई मारा ।

कुश - सीता इन्हीं राम की धर्मपत्नी थीं ?

लक्ष्मण—हां ।

कुश - तो सीता का या उसके गर्भ का कोई वृत्तान्त आप को ज्ञात नहीं ?

लक्ष्मण—ज्ञात हुआ है - तुम्हारे ही सगीत से ।

राम—क्या इसके आगे फिर, कोई शुभसमाचार सुनने को मिलेगा ? (सोच कर) यूँ पूछूँ--महानुभावो ! तुम ने ही यहां तक पढ़ा है या कहानी ही यहां तक है ?

कुश—हम नहीं जानते कुछ भी ।

राम—कण्व से पूछना चाहिए । लक्ष्मण ! कण्व को बुलाओ ।

लक्ष्मण—(जाकर कण्व के साथ पुनः प्रवेश करता है)

कण्व—(देख कर)

ये सीता-सुत सहित सुशोभित यहां हो रहे राम ।
तिष्य-पुनर्वसु नक्षत्रों से मानों विधु अभिराम ॥

लक्ष्मण—भाई जी ! ये आगये कण्व ।

राम—(प्रणाम कर) बैठो यह आसन है।

कण्व—(बैठकर) यदि रामायण सुनने का चाव है तो कहो—लव कुश कहां तक सुना चुके ?

लक्ष्मण—'सीता को ले साथ......" (यह पढ़कर) यहां तक सुनाया है कुशलव ने।

कण्व—उससे आगे सुनो—

राम—क्या चारा है ?

कुशलव--ये सीता के सम्बन्ध में मङ्गल गायेंगे।

कण्व—सुन वाल्मीकि-मुनीश्वर शिष्यों से सीता-वृत्तान्त।
उसे दिलासा दे ले आए अपने आश्रम शान्त॥

राम—भगवान् ने बड़ी कृपा की रघुकुल पर। मुझे उबार लिया।

कुशलव—सौभाग्य ! सीता का और अनिष्ट न हुआ वह बच गई। (सब प्रसन्न होते हैं)

कुश—प्रिय लव ! भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में वह सीता कौन सी है ?

लव—कोई भी नहीं। कविता में पड़े हुए 'सीता-सीता' ये अक्षर-मात्र ही शेष हैं।

राम—फिर क्या हुआ ?

कण्व—जैसे द्यौ ने चन्द्र सूर्य, दिन पूरे हो जाने पर-

सीता ने उत्पन्न किये दो युगल-पुत्र अति सुन्दर॥

लक्ष्मण—जय हो आपकी, फलता फूलता रहे रघु का कुल।

कुशलव –बधाई! महाराज को पुत्र-जन्म की।

राम—(मन ही मन) कहीं ये कुशलव हो तो वे नहीं?

कण्व—करके जातकर्म-सम्बन्धो सारे मङ्गल-काम।

मुनि ने विधिवत् रक्खे उनके सुन्दर कुशलव नाम॥

राम—क्या! ये ही सीता-पुत्र हैं! हा! पुत्र कुश, हा! पुत्र लव!

लक्ष्मण—यही वह सीता के गर्भ से उत्पन्न आप की अपनी सन्तति है।

कुशलव—यही वह कैसे? हाय पिता! रक्षा करो।

(आपस में आलिंगन कर मूर्छित होजाते हैं)

कण्व—(विषाद के साथ) यह क्या गज़ब हो गया, हाय?

मन्द भाग्य, हित चिन्तक मैं ने करके मंगल-गान।

इन चारों रघुवीरों का यह किया देह-अवसान॥

(देख कर) सौभाग्य से सांस तो कुछ चलसा रहा है। चलकर यह समाचार भगवान् और देवी को सुनाऊं। (जाता है)

(वाल्मीकि और घबराई हुई सीता का प्रवेश)

वाल्मीकि—बेटी! जल्दी, देर न हो। बेहोशी का इलाज

जल्दी न किया जाय तो मृत्यु भी होसकती है।

सीता— हिये, सच २ कहिये, रघु के ये वंशधर जीते हैं?

वाल्मीकि—शान्त हो, ये जीवित हैं। नहीं देखती इनका श्वास चल रहा है?

सीता—पूरा विश्वास करवा दिया है मुझे आपने।

वाल्मीकि—(खोजकर)

सीता! दृढ़ कर हृदय उधर तो तू करले दृक्पात
तेरी चर्चा-प्रलय-वात ने किया सूर्य-कुल-घात॥

सीता—(लजाकर) भगवन्! उनकी आज्ञा है कि मैं उनके सामने न आऊं।

वाल्मीकि—(दृढ़ता से) मेरे सामने रोकने या अनुमति देने वाला कौन? जाओ, वाल्मीकि तुम्हें उसको देखने की आज्ञा देता है। अपने स्वामी के पास बेखटके जावो।

सीता—(देखकर) ओह! यह हाल है? मैं बिलकुल मारी गई अभागिनी। (पृथिवी पर गिर रोती है)

वाल्मीकि—उठ, धैर्य धारण कर। मैं भी राम लक्ष्मण को शान्ति देता हूं—वत्स राम! वत्स लक्ष्मण! धैर्य धारण करो।

सीता—बेटा कुश, बेटा! लव, स्थिर हो। (पानी के छींटे

देती है)

राम—(होश में आकर) आर्य कण्व ! जीवित है वैदेही ?

वाल्मीकि—सामने ही है ।

राम—(देखकर) हैं, आप यहां कैसे ? (लज्जित होता है)

वाल्मीकि--मत शरमाओ ! शरमाना स्त्रियों का काम है ।

लक्ष्मण—(होश में आकर) भाई जी भी होश में आगये या नहीं ?

राम--आगया हूं मैं अभगा ।

कुश लव—(होश में आकर) पिता बचाओ ।

(पावों पर गिर पड़ते हैं)

राम लक्ष्मण—(दोनों को हृदय से लगाकर शान्त करते हैं) पुत्रो घबराओ मत ।

वाल्मीकि—आह, पिता को देखकर मचल गये । क्यों, किसलिये रोते हो ? पोंछ डालो आंसू ।

कुश लव—(आंसू पोंछकर राम को देखते खड़े रहते हैं)

सीता—(एक ओर को, अलग, कुश लव से) यह कौन है जिसे तुम यूं देख रहे हो ?

राम—ओह, कैसी उदासीनता है सीता की ? इतने दिन बाद प्रथम-मिलन के समय भी एक बार मुख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती ।

वाल्मीकि—(क्रोध से) उदार हृदय ! महा कुलीन ! विवेकशील ! राजन्, महाराज जनक द्वारा तुम्हें सौंपी गई, दशरथ द्वारा स्वीकार की गई, अरुन्धती द्वारा जिसका मंगल किया गया, वाल्मीकि ने जिसके शुद्ध चरित्र की घोषणा की, अग्नि ने जिसकी पवित्रता की परीक्षा ली, कुश लव की जननी, भगवती वसुन्धरा की पुत्री उस सीता को केवल कुछ झूठी अफवाहों के कारण छोड़ देना तुम्हें कहां तक उचित है ?

राम—(विवशता का अभिनय करता है)

वाल्मीकि—लक्ष्मण ! तुम्हें भी ठीक था यह ? या, तुम्हें क्या दोष देना ? तुम तो आज्ञाकारी छोटे भाई हो। (राम से) रावण के वध के पश्चात् सीता को स्वीकार करने के लिये तुमने किसे प्रमाण माना था ?

राम—भगवान् अग्नि को।

वाल्मीकि—फिर अविश्वास क्यों ?

सीता—हा धिक् ! हा धिक् ! मुझ अधन्या के कारण आर्यपुत्र को इस प्रकार बुरा भला कहा जा रहा है। (कान मूंद लेती है)

वाल्मीकि--शुद्धि-परीक्षा में सीता की पावक किया प्रमाण।
दिया निरङ्कुश जन-निन्दा को फिर क्यों मन में स्थान?॥

राम--(हाथ से छूकर रोकता है)

वाल्मीकि--क्यों, अपने हाथ से मुझे कहने से रोकना चाहता है ?
मन में साधारण जन के ही--सुभग प्रेम की बेल--
सदा पनपती है, न नृपों के, नहीं रेत में तेल॥
वत्स राम! सिर क्यों खुजा रहे हो? कुश लव को स्वीकार करो। हम भी अपना मार्ग लें। (चलता है)

राम लक्ष्मण--आप प्रसन्नता पूर्वक जा सकते हैं।

वाल्मीकि--(लौट कर) सीते! तपोवन-निवासियों को भी दण्ड देने का राजा को अधिकार है इसलिये अपने आपको निर्दोष सिद्ध करो।

सीता--इससे क्या होगा ?

वाल्मीकि--तू निर्दोष सिद्ध होगी।

सीता--(लज्जा के साथ) लोगों के बीच में खड़ी होकर यह कहूं कि जनक महाराज की अभागिनी बेटी सीता शुद्ध चरित्र वाली है ?

वाल्मीकि--शपथ के साथ अपनी निर्दोषता की घोषणा कर।

सीता—गुरुओं का आदेश टाला नहीं जा सकता । (हाथ जोड़, सब ओर देखकर) हे सब लोकपालो ! आकाश में विचरण करने वाले देव, गन्धर्व, सिद्ध विद्याधरो ! अपने प्रभाव से संसार के सब रहस्यों को प्रत्यक्ष देखने वाले वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि महार्षियो ! सारे संसार के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाले रघुकुल प्रवर्त्तक हे भगवान् सूर्य ! सीता अपनी चरित्र-शुद्धि के विषय शपथ करती है ।

वाल्मीकि--दिव्य शक्तियों की सहायता के बिना ही सीता के केवल पातिव्रत्य के प्रभाव से होने वाले इस आश्चर्य को आप सब देखें—

सब—(आश्चर्य से) देवी के बोलते ही स्थावर-जंगमात्मक यह सारा संसार सब काम छोड़कर निस्तब्ध तथा चौकन्ना हो गया । देखो—

शान्त हो गये रोक तरंगों को वे जलनिधि सारे
प्रकृति-चपल भी पवन व्योम में हुवे अचल मनमारे ।
स्तब्ध कर्ण हो खड़े हो गये दिग्गज दिशा दिशा में
सुनने सीता को जग सारा खड़ा श्वास तक थामे ॥

सीता—सारे संसार का कल्याण करने के लिये पिता की

आज्ञा को शिरोधार्य करनेवाले, उखाड़े हुवे हज़ारों बड़े २ पहाड़ों से पुल बनाकर अपार पारावार को विभक्त करदेने वाले, स्वर्ग, मर्त्य, पातल—तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धारी रघुकुलनन्दन तुम्हें छोड़कर यदि किसी पर पुरुष को मैंने पति-व्रताओं के विरुद्ध भाव से आंख उठाकर भी नहीं देखा, किसी से एक शब्द भी कुभाव से नहीं बोली, हृदय में कुविचार तक नहीं किया। तो मेरे इस सत्य वचन के प्रभाव से सारे विश्व को अपना दिव्य रूप दिखलाती हुई महाप्रभावा भगवती वसुन्धरा मेरी हृदय-शुद्धि को लोक में प्रकाशित कर दे।

(सब संभ्रम का अभिनय करते हैं)

वाल्मीकि—कुछ भी समझ में न आने वाला यह भयानक परिवर्त्तन कैसा ?

इसे देख लोगों के हृदयों में अभूत पूर्व भावों का उदय हो रहा है।

पातालतल से नाद उठ कर,

भर रहा आकाश को।

हिलहिल प्रकाशित कर रहे हैं,

शैल हर्ष-विकाश को ।

ये लांघ तटवनरूप सीमा

को पयोनिधि जोर से।

खारी जलधि को मथ रहे,

इस ओर से उस ओर से॥

सीते! ये सब चिन्ह तेरे ही लिये प्रकट हो रहे हैं, इसलिये फिर एक वार अपनी शपथ को दोहरा दे।

सीता—['सारे संसार का कल्याण...' आदि को दोहराती है]

(नेपथ्य में)

कल्याण हो गौओं का, कल्याण हो ब्राह्मणों का, कल्याण हो रघुकुल का।

खिंची सत्य से सीता के ही, शीघ्र छोड़कर वह पाताल
जल में मज्जन की लीला से त्याग अचेतन रूप विशाल।
साक्षात् दिव्य-देह कर धारण यह धरणी माता तत्काल
मर्त्यलोक में प्रकट होरही मुकुट-सुशोभित सुन्दर भाल॥

सब—(सुनकर आश्चर्य का अभिनय करते हैं)

वाल्मीकि—पहिले कभी, न देखे, न सुने गये, ये आश्चर्य पर आश्चर्य कैसे हो रहे हैं?

यह उठ रही पाताल से नव-ज्योति, शुभ सुरभित पवन—
ये वह रहे हैं-होगया जिनसे सुवासित सब भुवन।

यह हाथ जोड़े प्रकट वसुधा होरही सुषमा-स्थली
लक्ष्मण ! झुको, कुश ! लव ! बखेरो मंजु तुम पुष्पाञ्जली॥
सब—(कथनानुसार अभिनय करते हैं)

(समान, बहुमूल्य उज्ज्वल वेषवाली फूल बरसाती हुईं बहुत सी स्त्रियों के साथ पाताल—तल को फोड़ती हुई पृथिवी देवी प्रवेश करती है)

सब—(हाथ जोड़ कर)

तुमने किया जगत् को धारण, तुम्हें शेष ने सिर पर।
इष्ट पदार्थ सुरों ने पाये कभी तुम्हें ही दुह कर
देवि ! पयोधर-रूप तुम्हारे शिवगिरि विन्ध्य महीधर।
हृदय-हार सुरनदी, मेखला रत्नमयी रत्नाकर॥
यज्ञाङ्गों के लिये इन्द्र बरसाता तुम पर वारी।
तुम करतीं उत्पन्न रत्न सब, औषधियां भी सारी॥

प्रणाम हो भगवती विश्वम्भरा को। (प्रणाम करते हैं)

पृथिवी—(चारों ओर देखकर) ओह ! प्रतिकार के लिये उद्यत हुई पतिव्रताओं के शासन को कौन उल्लंघन कर सकता है ?

सारा जगत् जगमगाकर भी दिनकर के कर जहां प्रवेश—
पाते नहीं, मन्द कर लेते गति को अपनी जहां खगेश।
होने से अति दूर पहुंचते जहां न साधारण योगेश

यह सीता ही मुझे वहां से भी ले आई है इस देश ॥
तो, उससे ही बात करूं। बेटी सीते! मुझसे क्या चाहती है तू?

सीता—(आश्चर्य के साथ देख कर) भगवती! आप कौन हैं?

पृथ्वी—मुझे नहीं जानती तू?

मैं ही हूं ओङ्कार-सहचरी-कहते हैं सब मुनिजन
मुझ से ही उत्पन्न हुआ है सकल चराचर त्रिभुवन।
पाते हैं फल ऋषि मुझ पर ही कठिन तपस्या कर कर
मैं हूं मही-देवता, आई तेरे पास यहां पर ॥

और, पुत्रि! यह भी पता रहे तुझे—

दो ने ही यूं मुझे उबारा पतिव्रता-सरताज।
या तो पहिले उस वराह ने या तूने यह आज ॥

सीता—(हाथ जोड़ कर) भगवती! आपने जैसे शुद्ध-चरित्र वाली मुझे परखा है कृपा कर संसार के सामने वैसी ही प्रकाशित कर दीजिये।

पृथ्वी—तथास्तु! (चारों ओर देखकर)

गुह्यक! दानव! ऋषि! नर! किन्नर! सिद्ध! तथा दिक्पाल!
मुनि! गन्धर्व! सभी हो जावो सावधान इस काल ॥

'सीता सती पतिव्रता' सुनो सकल संसार।
मन में भी पर पुरुष का इसके नहीं विचार ॥

(आकाश से फूल बरसते हैं और बाजों की आवाज़ आती है)

सब—(प्रसन्नता से) ओह ! कैसा आश्चर्य है ? भगवती वसुन्धरा-द्वारा शुद्धि की घोषणा होते ही, ये और भी नाना प्रकार के आश्चर्य प्रकट होने लगे —

गूंज रहे हैं सुर-वाद्यों की ध्वनि से सकल-दिगन्तर
बरस रहे हैं अन्तरिक्ष से सुरभित कुसुम निरन्तर।
अकस्मात् तन गया गगन में यह देवी के ऊपर
दिव्य वितान बिना स्तम्भों के कैसा अद्भुत सुन्दर ॥

(नेपथ्य में)

सत्यसन्ध जय दशरथ नृप ! जय एक धनुर्धर राम !
जय रघुकुल ! अकलंक जानकी ! जय चरित्र-गुण-धाम ॥

पृथ्वी—है सीता शुद्धाचारिणी ?

सब—(हाथ जोड़ कर)

प्रकृति-विमल सीता-ज्योत्स्ना थी जन-निन्दा-घन-छादित।
शरत्सदृश ! भगवति ! की तुमने वह फिर शुद्ध प्रकाशित ॥

(प्रणाम करते हैं) बिछुड़ा हुआ यह अलौकिक युगल फिर मिल जाय किसी तरह !

वाल्मीकि—हे कौशल्या-पुत्र राम ! पवित्र मानते हुए स्वीकार कर सीता का सत्कार करो।

राम--जो आज्ञा भगवन्! प्रिय लक्ष्मण! करो चरण-वन्दना।

सीता--(हाथ जोड़ कर हर्ष से) जय हो आर्यपुत्र !

वाल्मीकि--अहा! कैसा श्रेष्ठ तथा शोभाशाली प्रकार है स्वीकार करने का ?

लक्ष्मण--(हर्ष तथा लज्जा के साथ) भाभी! फांसी चढ़ने के योग्य यह लक्ष्मण प्रणाम करता है।

सीता--तुम अपनी अवहेलना क्यों करते हो लक्ष्मण! बड़ों की आज्ञा का पालन इसी प्रकार करते हुवे तुम युग युग जिओ।

वाल्मीकि--वत्स राम! तुम सीता को स्वीकार कर चुके। अब इसे स्वयं बुला, अपने हाथ में इसका हाथ पकड़ यज्ञाधिकार में नियुक्त करो।

राम--(शरमाता है)

वाल्मीकि--शरमाओ मत। सब की उपस्थिति में राम द्वारा सीता का यह अपूर्व पाणिग्रहण यज्ञविधि के बिना क्या शोभा पाएगा ?

राम--लोकाचार और उस पर भी बड़ों का आदेश (सीता का हाथ पकड़ कर) भद्रे वैदेहि !

सुत, हुत-ये दो फल पत्नी के बतलाते हैं पण्डित।

पहला तुमसे मिला, दूसरा भी दो, कर गृह मण्डित॥

सीता--जो आज्ञा आर्यपुत्र! फिर मेरी जान में जान

आगई। मैं जी उठी आज।

पृथ्वी—बिना विघ्न हों यज्ञ, प्रजा में हो न दुःख भय रोग।
मंगलमय हो सब को सीता-रघुपति का संयोग॥

(अन्तर्धान होती हुई जाती है)

राम—यह क्या ? पृथ्वी अन्तर्धान हो गई।

वाल्मीकि—देवता लोग किसी के पास देर तक नहीं ठहरते।

राम—भगवान् की आज्ञा से मैं लक्ष्मण का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़कर) आप प्रसन्न हैं तो कृपा कर इस पुराने दास को अनुमति दीजिये कि यह अपना अधिकार कुल के ज्येष्ठ कुमार कुश को दे दे।

वाल्मीकि—लक्ष्मण की प्रार्थना इक्ष्वाकु वंश वालों के अनुरूप ही है।

राम—क्या चारा है ? लक्ष्मण के आग्रह को राम टाल नहीं सकता। यदि लक्ष्मण ने भी फिर यही करना है तो मैं ही पहिले क्यों न करदूं ? अभिषेक की सामग्री ले आओ लक्ष्मण !

लक्ष्मण—भाईजी ! अभिषेक योग्य सब सामग्री हाथों में लिये देवता पहले ही से उपस्थित हैं—देखिये—

पकड़ा हुवा छत्र सुरपति ने धवल चन्द्र सा सुन्दर,
शची जान्हवी लिये हुवे हैं अपने कर में चामर।

कञ्चन-कलशों में जल भर भर प्रमुदित खड़े प्रजाजन,
प्रणय सुलभ होते हैं सब ही ऐसों के सुख-साधन ॥

राम—तो, बचा हुवा राजदण्ड-ग्रहण का अधिकार हमारे हिस्से रहा ।

लक्ष्मण—इस कर्त्तव्य में साझी बनाकर मुझे भी अनुगृहीत किया गया है ।

राम—राज-दण्ड पकड़ो लक्ष्मण ! (वाल्मीकि से) भगवन् ! अपने नाती का अभिषेक कीजिए ।

वाल्मीकि—(कलश लिए हुए पास जाकर) अयोध्यानिवासी पुरजनो ! देश-देशान्तरों से पधारे राजा महाराजाओ ! विभीषण, सुग्रीव, हनुमान आदि महारथियो ! सुनो सब—

सीता-सुत कुश नाम महारथ रघुकुल के सिंहासन—
पर आरूढ़ हुवा सब अब से मान इसका शासन ॥
देवलोक में देवराज का जो होता है मंगल,
नागलोक में नागराज का जो होता है मंगल ।
मान्धाता का जो कि मही पर हुवा कभी वह मंगल,
तेरा भी सर्वत्र आज हो पुत्र सभी वह मंगल ॥

(नेपथ्य में मङ्गल-ध्वनि)

जय हो, महाराज की जय हो !

सीता—ईश्वर की कृपा से आज मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए ।

राम—और लक्ष्मण के भी !

सब—(प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)।

राम—(कुश से) राजन्! आपकी अनुमति हो तो मैं लव को
युवराज बनाना चाहता हूँ।

कुश—जो आज्ञा पिता जी!

राम—अहा! आनन्द! (कलश लेकर)

महाराज कुश का लघु भाई यह लव वीर उदार।
स्वयं राम करता है घोषित इसको तिलक-कुमार॥

सब—(यथायोग हर्ष का अभिनय करते हैं)

वाल्मीकि—मैं तुम्हारा और क्या प्रिय करूँ ?

राम—दैवयोग से हुए—आपके शुभदर्शन से प्यारी,
शुद्ध प्रकाशित हुई, यज्ञ में बनी पुनः अधिकारी।
दोनों सुत भुवनाधिकार में हुए नियुक्त गुणाकार,
कहें आप ही मेरा क्या प्रिय होगा इस से बढ़कर॥
मैं आपको क्या भेंट दूँ क्या सेवा करूँ।

वाल्मीकि—तो भी इतना और हो—

शिव ब्रह्मा नारायण सागर गण पावक पवमान,
परम पवित्र वेद ये चारों, तीनों लोक महान।
विद्या-तप-भूषित सब कुलपति, सब तापस व्रतधारी,
मंगलकारी हों इस नृप को, गोकुल बढ़े सुखकारी॥

(सब जाते हैं)

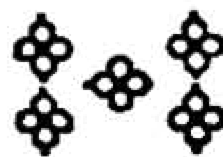
छटा अङ्क समाप्त

छापे की अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पीलें	पी ळे	१	४
खेलूं तो	खेलूं । तो	१	११
सब ये	सब, ये	१४	२
तुझे	तुम्हें	१७	२
आराम	उस राम	१७	५
मरा	मेरा	२२	२०
जकड़ी	जकड़	२६	६
वे	ये	३१	१६
नहीं	नदी	३२	३
कारण	से	३२	१२
भेंट की	भेंट की है	३३	५
नेत्रलता	वेत्रलता	३४	१०
वक	वक्र	३४	१२
सौभाग्य०-तिलक	सौभाग्य-तिलक	३६	६
ठण्डे	ठंढे	३६	६
कर	कर)	३८	३

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
जिसके	इसके	३८	२०
बिछा	बिछ	३६	१
छोड़कर	छेड़कर	३६	१६
पार्थक	पथिक	४३	१२
से यह	से सुभग यह	४७	१
कुम्हलाता	कुमलाता	५१	१
रखती	रचती	५१	११
स्यन्द	स्पन्द	५१	१४
हैं।	हैं ?	५२	१२
कि आ० अचा-	कि अचा	५३	३
वे	ये	५६	[illegible]
करो न	कर मत	५६	११
हो	होओ	५६	१२
तुम्हें	तुझे	५६	१३
वे	ये	५६	१६
केरते	करता	५६	१४
नहीं	वही	५७	१८
अ[illegible]	अस्त	६३	५
मरीचि	मरीची	६८	१२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
छेड़ कर	छिड़ कर	६८	१४
मुग्ध, मृग-	मुग्ध, वक्र, मृग-	७६	१६
आये	आयें	७७	१६
शरीर	शरीर।	७८	१४
पहिले कहा	पहिले ही कहा	७८	२०
गुरु	पिता	८०	१३
जाकर	गाकर	८४	३
नाम		८४	११
मन		८४	११
[illegible]		८४	१२
सब		८८	८
विषय शपथ	विषय में शपथ	६७	८





विश्व साहित्य ग्रन्थमाला

(सम्पादक—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार)

इस माला में संसार के सर्व श्रेष्ठ साहित्य का हिन्दी अनुवाद तथा ऊँचे दर्जे के मौलिक हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशित किये जा रहे हैं। कहानी, उपन्यास, प्राचीन साहित्य, कविता, इतिहास, राजनीति, दर्शन आदि अनेक विभागों में विश्व साहित्य ग्रन्थमाला की पुस्तकें प्रकाशित होंगी। स्थायी ग्राहकों को इस माला की सम्पूर्ण पुस्तकें २५ प्रतिशत कमीशन पर दी जावेंगी। स्थायी ग्राहक बनने का चन्दा केवल एक रुपया है।

मैनेजर—
विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
मैक्लेगन रोड, लाहौर।

